फूलों की दुनियाँ

विद्यासागर

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-110055

विषय-सूची

"मानव के लिए प्रकृतिवादी बनना संभव नहीं। वह प्रकृति का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकता। वह केवल अपनी आँख की सहायता से ही यह कार्य कर सकता है। उसे प्रकृति के और उससे परे दर्शन करने हैं।"

—हेनरी डेविड थोरो

"जब तक हम संपूर्ण सृष्टि को साक्षात्कार का माध्यम नहीं बना लेते, कोई विशेष साक्षात्कार संभव नहीं है......"

—विलियम टेम्पल

१. दरार

पृथ्वी के कुछ भाग घास-भरे समतल मैदान हैं जिनमें सदा एक-सी धूप खिली रहती है। मनुष्य के हाथों अछूते, काल से परे ये मैदान धूप में मुस्कराते चिरयुवा-से लगते हैं। कुछ भाग धृष्ट बुढ़ापे की आकृति से टेढ़े-मेढ़े, बीहड़ और उजाड़ होते हैं, जहाँ चट्टानें ऐंठन खातीं, धरती से बाहर झाँकतीं, नंगी खड़ी हैं, जिनकी गहरी खाइयों में सूरज की किरणें पड़ती तो हैं मगर उन्हें रोशन नहीं कर पातीं।

मैं अपने घोड़े पर सवार हो पृथ्वी के ऐसे ही एक प्रदेश की ओर चला, लेकिन वहाँ तक घास के ऐसे मैदानों को पार कर पहुँचा जो खिलखिलाती धूप से रोशन समय की गति से अछूते थे और जिनसे होकर हिरणों और भटकते पक्षियों के अलावा कोई कभी गुजरा न था। जिस छोर पर चिकनी मिट्टी और नंगी चट्टानों की एक विशाल दीवार के पास घास का वह मैदान खत्म होता था वहीं पर दरार थी। किसी वेगवती धारा से घिसी-पिटी यह एक संकरी दरार थी जो घास के मैदान में दूर कहीं पीछे, गुपचुप शुरू होती, सुन्दर बलुए पत्थरों को गहरे और गहरे काटती, टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होती हुई बीहड़ और उजाड़ प्रदेश की ओर आ निकलती थी। मैं उस दरार के किनारे-किनारे एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ से इसके अन्दर घुसा जा सकता था। मैं घोड़े से उतरा और उसे चरने के लिए छोड़ दिया।

इस स्थान पर दरार की चौड़ाई मेरे शरीर के लगभग बराबर थी। ज्यों-ज्यों मैं नीचे उतरता गया, त्यों-त्यों रोशनी गहरी और दरार के ऊपर झुकी घास के कारण हरी होती गई। ऊपर आकाश, दूर स्थित तंग नीली फाँक-सा दिखाई देने लगा था और मेरे दोनों ओर था बालुई चट्टान का ठण्डा स्पर्श।

फाँक थोड़ी कुछ कुटिल-सी दिखाई देती थी. ऐसा लगता था जैसे कोई खुली कब्र है जिसके मुर्दे को एक बार आखिरी निगाह डालने का मौका दे दिया गया हो—क्योंकि आसमान मुझ से इतना दूर चला गया था जैसे कोई भावी शताब्दी हो जिसे मैं कभी न देख पाऊँगा ।

मैंने आकाश की उपेक्षा कर उन चट्टानी दीवारों पर ध्यान केन्द्रित किया जिनमें होकर मैं यहाँ तक पहुँचा था । यह एक सुघड़-सफाई का काम था लेकिन धरती के बीच से कटी यह फाँक शायद एक करोड़ वर्षों की पूर्ण साक्षी थी । धरती के अन्दर दबी इन लम्बी अवधियों के पर्तों के बीच मुझे कम-से-कम किसी प्राणी की एक अस्थि मिलने की आशा थी. लेकिन आगे जो कुछ मैंने पाया उसे देखने के लिए मैं एकाएक तैयार न था । हरे धुँधलके में ज्योंही मैं और गहराई में आगे खिसका तो देखा कि ठोस बलुए पत्थरों के बीच फँसी एक खोपड़ी सीधे मेरी ओर ताक रही थी । मैं ऐसे मौके पर पहुँचा था जबकि उसे पूरे तौर पर देखा जा सकता था । पानी के प्रवाह में धुली-पुँछी वह सफेद हड्डी एक किस्म की धूसर चमक से दमक रही थी । लगता था जैसे किसी अगले जल-प्रवाह में निकल कर वह जाने को तैयार हो ।

सच है कि यह मनुष्य की खोपड़ी नहीं थी । मैं दरार के अन्दर इतनी नीची पर्त में पहुँच गया था कि पृथ्वी के उस काल में मानव पैदा ही नहीं हुआ था. वह तो सुदूर भूतकाल की पर्त थी । उस समय स्तनपायी प्राणियों का युग आरम्भ हो ही रहा था । मैं उस तंग घाटी में एड़ी के बल नीचे बैठ गया और शून्य दृष्टि से उसे घूरने लगा । उस पिचके हुए कम चौड़े मस्तिष्क और खीस निपोरते जबड़े में, ऐसे सामान्यीकृत आदिम चिह्न वर्तमान थे जिनसे प्रकट होता था कि वह सुदूर अतीत में विकास क्रम के ऐसे संधिस्थल का प्राणी था जिसमें बिल्ली, मानव और वीजल की विशिष्टताएँ एक ही रूप में समा गयी थीं । इस स्थापना की पुष्टि मैं अन्यत्र करूँगा ।

वह एक ऐसे प्राणी का चेहरा था जिसने घ्राण-शक्ति के सहारे अपने दिन बिताये थे, जो स्मरणशक्ति की अपेक्षा अपनी सहज प्रवृत्ति से काम लेता था और उसकी पसन्द बहुत सीमित थी । यद्यपि वह न तो मानव था न मानवों का कोई सीधा पूर्वज, फिर भी उस प्राणी में, यहाँ तक कि उसकी हड्डी में, उस निम्न नकबोले प्राणि-जगत् के कुछ चिह्न थे, जिनसे हमारे पुरखे अभी कुछ ही समय पूर्व विकसित हुए थे । खोपड़ी कुछ ऐसे अन्दाज में तिरछी थी, लगता था जैसे सूनी निगाहों से ऊपर मुझे ताक रही हो । गोया मैं स्वयं भी उसी की तरह कुछ ऊँची सतह पर फँसा होऊँ और ढहते पहाड़ों के गिरते मलबे के नीचे दबा उस आकाश की ओर टकटकी बाँधे होऊँ, जिसे युग-युग का अन्तर सुदूर

से दूर और दूर लिये जा रहा हो। यह प्राणी मनुष्य को देखने के लिए जीवित नहीं बचा और मैं, मैं जिसे कभी भी नहीं देख सकूँगा, वह क्या है ?

इस विचार से मैं एकाएक डर गया, भय-त्रस्त मन में इच्छा जागी कि भाग चलूँ, ऊपर दरार के बाहर दूर होते हुए आसमान की ओर। पर मैंने इस इच्छा को दबा दिया। धैर्यपूर्वक झोपड़ी के चारों ओर के पत्थर को, छेनी से काटने का काम शुरू करते हुए, सोचने लगा कि मैं अब आगे किसी फॉसिल की खुदाई ऐसी परिस्थितियों में नहीं कर पाऊँगा जिनमें मुझे ऐसा तीव्र स्पष्ट अनुभव हुआ हो कि मैं स्वयं फॉसिल के साथ एकाकार हो गया हूँ। सच तो यह है कि हम सब भविष्य में बन सकने वाले फॉसिल हैं। हमारे शरीरों में अभी भी विकास-क्रम के पिछले जीवों के अपरिष्कृत रूप विद्यमान हैं, ऐसे जीव-जगत् के चिह्न शेष हैं जिसमें युगान्तर के साथ, बनते-बिगड़ते बादलों की तरह या उनसे कुछ ही कम अस्थिरता से, विविध जीवन-रूप बदलते रहे हैं।

जगत् के मूलाधार में छेनी पर ठक-ठक करते और चट्टान तराशते समय, मनुष्य की उँगलियों की चतुराई-भरी कुशलता पर विचार करने के लिए मेरे पास पर्याप्त समय था। प्रयोग के तौर पर मैंने एक पतली, लम्बी, मुलायम हड्डी को मोड़ा। मैंने यह सोचा, यह हड्डी सिलिका, अल्यूमिनियम, या लोहे की भी तो हो सकती थी। जीव-कोश इस बात को सम्भव बना सकते थे मगर ऐसा नहीं हुआ, यह कैलशियम से बनी है, चूने के कारबोनेट से। क्यों ? केवल अपनी विकास की कहानी के कारण पृथ्वी की ऊपरी पर्त में कैलशियम की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाये जाने वाले तत्त्व,, अस्थिपंजर के निर्माण में प्रयुक्त हो सकते थे। लेकिन, हमारे इतिहास के कारण ऐसा नहीं हो सका, हम जल से आये थे और वहाँ जीव-कोशों को कैलशियम की आदत पड़ी और जब हम जल को छोड़ सूखी धरती पर आये तब भी वह आदत बनी रही।

मैंने फिर सोचा यह उस लम्बी निरुद्देश्य यात्रा का बुरा प्रतीक नहीं है। मनुष्य का हाथ—जो कभी मछली का डैना था, सरीसृप का परतदार खुरदरा पैर था और बालदार जानवर का पंजा था। अगर कोई पत्थर गिर पड़े (मैंने अपने सिर के ऊपर झुकी एक चट्टान की ओर निगाह डाली और और भाग्यवादी की तरह प्रतीक्षा की कि अब गिरी), गिरने दो पत्थर को, ताकि ये हड्डियाँ अपने पैगाम के साथ उनके लिए यहीं पड़ी रहें, जो बरसों बाद नक्षत्रों से आकर इनमें निहित गुप्त सन्देश को पढ़ सकें।

लगा कि मेरे ऊपर दरार की वे विशाल दीवारें और भी लम्बी हो गई।

मन के भीतर-ही-भीतर एक विचार ने करवट ली—जहाँ तक मानव-बुद्धि सोच सकती है इस यात्रा का शायद इसके सिवा कोई अर्थ नहीं कि यह एक

यात्रा-सर है। जीवन के संयोगों के साथ यह बदलती रही है और संयोग ही से हम वर्त्तमान स्थिति तक पहुँचे हैं। जो भी हो यह यात्रा अच्छी थी—शायद लम्बी—लेकिन सुहानी धूप में एक अच्छी यात्रा। इसका उद्देश्य मत खोजो। सोचो कि किन राहों से होकर हम आये हैं और उस पर थोड़ा गर्व करो। उस हाथ के बारे में, इसकी उस असह्य वेदना के बारे में सोचो जब यह पहले-पहल जल से निकला, कँकरीले तट पर आया था।

या फिर विचार करो कि धरती पर आने के बाद यह कहाँ-कहाँ भटका।

मैंने खोपड़ी के रेत-भरे कोटरों के इर्द-गिर्द थपथपाना बन्द किया और तम्बाकू का दम लगाने के लिए चट्टान की एक दरार में घुस गया। पाइप में तम्बाकू भरते हुए मैंने घाटी के पार उस बस्ती के बारे में सोचा जहाँ मैं कभी-कभी जाया करता था और जिसके नन्हें वासी कभी भी मेरा स्वागत नहीं करते थे। उसकी दिशा सूचित करने के लिए कोई संकेत-पट्ट नहीं है और अब मैं वहाँ शायद ही कभी जाता हूँ। कुछ ही लोगों को उसका पता मालूम है और उससे भी कम को यह मालूम है कि बहुत पहले हमें, या यों कहिये कि कुछ ऐसे जीवों को, जिनसे हम सम्बन्धित हैं, एक बार इस बस्ती से कुछ मायनों में भगा दिया गया था। वहाँ मैं अपनी कार एक पहाड़ी पर ले जाकर खड़ी कर देता और शान्ति से बैठा निरीक्षण करता। पड़ोसी को पड़ोसी से बातें करते सुनना, बस्ती के निवासियों को अपने दरवाजों पर ऊँघते देखना। यह सब देखकर मुझे अपने प्राचीन घर की याद आती और मन में बेचैनी भर जाती, मेरा वह घर जहाँ हवा में गम्भीर सुगन्ध व्याप्त थी, वह प्राचीरहीन गाँव, जहाँ कालगति से परे सूरज जगमगाता रहता था। हम उसे देख सकते हैं, पर लौट कर जाना असम्भव है। यह बस्ती है प्रेयरी डाग की (प्रेयरी-डाग कुतरनी वाली स्तनपायी जाति का गिलहरी से मिलता-जुलता जानवर है जो उत्तर अमरीका के घास के मैदान में बिल बनाकर बस्तियों में रहता है और भौंकने की-सी आवाज करता है।)

एरिस्टोफेनेज ने कहा है कि "सर्वाभव परिवर्त्तन ही भूपति है।" जीवन के आरम्भ-काल के इस कथन में सबसे अधिक सत्यता, आठ करोड़ वर्ष पहले थी जब स्तनपायी जीवों का युग आरम्भ हो रहा था। जिन्हें इस बात पर दृढ़ विश्वास है कि विधि का लेख अमिट है और मार्ग पूर्व-निश्चित है उन्हें पुरातन (पेलिओसीन) युग में पृथ्वी के इतिहास के अस्थिर सन्तुलन को देख कर धक्का-सा लगेगा। पुरातन युग के उदयकाल में, सरीसृप-युग की समाप्ति पर सैकड़ों जीवन-क्षेत्र वीरान पड़े थे और नये विकासशील हुए जीवन-रूपों की एक नई किस्म पैदा हो रही थी। एक समय ऐसा लगता था कि दैत्याकार

मछियों की अनदेखी-अनसुनी जातियाँ जैसे पृथ्वी पर हावी हो जायेंगी। उस समय जीवों के दो अलग-अलग वर्गों के बीच थोड़ी-थोड़ी अवधि के अन्तर पर जो संघर्ष चल रहा था वह था : सुहावने घास के मैदानों के लिए, बीजों के लिए और खुली धूप में आरामदेह बिलों के लिए।

कभी-कभी प्रेयरी-डाग बस्ती के ऊपर, पहाड़ी धूप में बैठा-बैठा मैं सोचा करता कि फर्न के जंगलों की नमी या कार्बन युग के दलदलों की कड़म्ती उदासी के बाद इस खुली दुनिया का आकर्षण कैसा अद्भुत रहा होगा। वहीं, मैं कल्पना में पुरानूतन युग की दुनिया के घुमक्कड़ और शाश्वत-पदयात्री को, सारी मानव-जाति के जनक उस नन्हे बेडौल चूहे को एक पेड़ की जड़ के पास जैसे स्पष्ट ही देख लेता। उसने धूप में अपने शरीर के बालों को कँपाया और नए बीज के लिए आगे फुदका। इस घास के मैदान में उसे फिर दिखाई देने के लिए बहुत अधिक समय लगना था, परन्तु वह अपना मन बनाने का अवश्य प्रयत्न कर रहा था। भले के लिए हो या बुरे के लिए, इस प्रयोजन से उसे एक अवसर और मिलना था, लेकिन पाँच करोड़ वर्ष बाद।

यहीं, इसी पुरानूतन-युग में गर्भ में पलने वाले स्तनपायी जीवों ने पहली बार तेजी से फैलना शुरू किया था। और उन्हीं में आरम्भिक वानरगण (Primate) वर्ग के स्तनपायी थे। इसी वर्ग में मनुष्य स्वयं भी शामिल है। आज के युग में एक-दो उपेक्षणीय अपवादों और मनुष्य को छोड़ कर प्राइमेट वर्ग के सभी प्राणी पेड़ों पर रहने वाले जन्तु हैं, इसी कारण हम इस बात की कल्पना करते रहे कि हमारे पूर्वज भी पेड़ों पर रहते होंगे। मगर हाल की खोजों से यह इक-तरफा विचार परिवर्तित होने लगा है। वर्तमान कुतरने वाले स्तनपायी, यानी रोडेण्ट्स—जिनमें आधुनिक युग के प्रेयरी डाग और चिपमक शामिल हैं—के उदय से पहले ये जिस वातावरण में रहते थे, वह अद्भुत रूप से जैसे सभी के इस्तेमाल के लिए खुला पड़ा था। इसी क्षेत्र में हमारे पूर्व-पुरुषों के कई दल आकर जमा हो गये थे।

एक विद्वान् ने कहा है कि "इन आरम्भिक प्राइमेटों में से बहुतों को अपने प्राकृतिक निवास-स्थान पर पुरानूतन युग के चूहे समझा जा सकता है। बाद में जब कुतरने वाले असली कृन्तक (Rodents) पैदा हुए तो प्राइमेटों का प्राकृतिक निवास-स्थान काफी हद तक सीमित हो गया।" दूसरे शब्दों में, प्राचीन अस्थि-अवशेषों की खोज करने वाले यह दर्शाने में सफल रहे हैं कि स्तनपायी जीवों के विकास के आरम्भिक काल में, बहुत से प्राइमेट वर्ग के प्राणियों के दाँत तथा खोपड़ियाँ बहुत कुछ कुतरने वाले जानवरों की तरह होते थे। विकास का यह क्रम आगे बढ़ता रहा और कई अलग-अलग वर्गों में बँट

गया। इनमें से एक प्राणी वास्तविक प्राइमेट होने पर भी आधुनिक कंगारू-चूहे से मिलता-जुलता था और यह सभी जानते हैं कि कंगारू चूहा एक कुतरने वाला जानवर है। इसमें शक करने को बहुत कम गुंजाइश है कि चूहे जैसा यह प्राइमेट जमीन में बिल बनाकर रहता था।

हमारे वर्ग के इतिहास के एक लुप्त अध्याय की यही वह साक्षी है जिसे मैं प्रेयरी-डाग बस्ती के ऊपर, धूप-भरे ढलान पर, बैठा याद कर रहा था, और इसी बात को ध्यान में रख कर लाक्षणिक रूप में मैं कह सका था कि युगों पहले एक बार हमें यहाँ से भगा दिया गया था। स्तनपायी जीवों के दूर के नाते के सिवा प्रेयरी-डाग से हमारा और कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी पुरानूतन युग के लाखों वर्षों के दौरान, प्राइमेट वर्ग का प्राणी पेड़ों पर रहने की अपेक्षा कुछ सीमा तक उन्हीं घास के मैदानों में बिल खोद कर रहने का प्रयोग कर रहा था, आवास के जिस ढंग को बाद में कृन्तक वर्ग के जीवों ने पूर्णता प्रदान की। बिलों में रहने वाले इन कृन्तक जीवों की सफलता से प्राइमेट वर्ग का स्थान सीमित होता गया और उन्हें इस खुले वातावरण को छोड़ कर पेड़ों की शाखाओं पर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि प्राइमेट वर्ग के बहुत से प्राणी जो धरती के भीतर रहने के अभ्यस्त हो चुके थे, नष्ट हो गये।

प्राणिवैज्ञानिकों के अनुसार पेड़ों की यह सीमित दुनिया, प्राइमेटों का 'शरण-स्थल' हो गया था। इसी सीमित दुनिया में बचे हुए प्राइमेट किसी प्रकार जीवन-निर्वाह कर रहे थे और दिन-प्रति-दिन उनकी संख्या कम होती जा रही थी। ऐसा लगता है कि जमीन पर रह कर फैलने की कोशिश में हमारे पूर्व-पुरुषों को हार खानी पड़ी। शीतोष्ण कटिबन्ध में वे धीरे-धीरे मरते जा रहे थे और व्यापक रूप से दूर-दूर तक फैले एक वर्ग के रूप में उनका महत्त्व घटता जा रहा था। मैंने कल्पना में पुरानूतन युग के जिस चूहे-जैसे प्राणी को सरीसृपों के युग की नम रातों के बाद अपने बालों को सुखाते देखा था, उसका फिर से बरसाती-जंगलों के हरे धुँधलके में विकास हो चुका था। लगातार बढ़ते दाँतों को किटकिटाने वाले कृन्तक, उसके मालिक थे। घास के मैदानों और सुनहरी धूप पर उन्हीं का अधिकार था।

यह समझ में आ सकता है कि यदि कृन्तक वर्ग के जीवों का आक्रमण न हुआ होता तो प्राइमेट वर्ग के प्राणी संभवतः पेड़ों पर रहना भी छोड़ देते। और तब हम उन्हीं घास के मैदानों में होते, मैं और आप उन ऊँचे मैदानों में भूँकते फिरते। यह सच है कि पेड़ों की दुनिया से अपने कुशल हाथों और आँखों का वरदान लेकर, हम पाँच करोड़ वर्ष बाद उन घास के मैदानों में

वापस आये। पर क्या यह हमारी विजय थी ? एक बार फिर मेरे स्मृति-पटल पर वह बस्ती उभर आयी और वहाँ मैं नीलाकाश से उनींदी संध्या का आगमन देखता हूँ, लौटने के लिए फिर से कार घुमाता हूँ और सदा की भाँति अपने दिमाग के किसी अस्पष्ट चौराहे का संकेत-पट्ट पढ़ने के लिए एक काल्पनिक लालटेन उठाता हूँ। अदृश्य संकेत-पट्ट अनाम स्थानों की ओर इशारा करते हैं। इन्हीं में से चुनना है कि किस अनजानी राह चलें, किस अनाम मंजिल पर पहुँचें ?

मैं अपने दिवा-स्वप्न से जाग कर अपने शरीर को खींच कर दरार से बाहर आया, अपने पाइप को झाड़ा और एक बार फिर छेनी से चट्टान को काटना शुरू कर दिया। छेनी पर बार-बार टकराते हुए हथौड़े की खट-खट, दरार के अन्दर सूखी सीढ़ियों के किनारे-किनारे किसी के चढ़ते-उतरते कदमों की गूँज-सी प्रतीत होती। सवेरे से अब तक मैं बहुत नीचे आ चुका था। मैं एक ऐसे विस्तृत क्षेत्र को लांघ कर पहुँच गया था, जहाँ मैं जीवित जा सकने योग्य न था। अन्त में मैंने अपने औजार उठाये और युग-युगान्तर से जमा विशाल मलबे में से निकल कर कुछ कष्ट के साथ ऊपर चढ़ने लगा। ऊपरी भाग में पहुँच कर मैंने अपने हाथ दरार के बाहर जमीन की सतह पर रखे और एकाएक इस शंका और सावधानी से अपने चारों ओर देखा कि कहीं मुझे अपने चरते हुए घोड़े के स्थान पर कोई और ही वस्तु न दिखाई दे।

लेकिन खैर, मेरे घोड़े में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था और मैं एक हल्की सिहरन के साथ उस पर सवार हो चल पड़ा, मेरे मन में किसी एक शिविर की याद थी—अगर मैं सही युग में हूँ तो वह शिविर उधर कहीं पश्चिम की ओर होगा। जो भी हो, मैं उस थोड़ी देर की कैद से पूरी तौर पर बचकर नहीं निकल पाया।

शायद, अपने अन्दर खुली अस्थियों को समाये वह दरार और दूर अदृश्य होता आकाश मेरे मस्तिष्क में एक ऐसे विस्तार का प्रतीक बन बैठा है जो मनुष्य के लिए अगम्य है, वह है समय का विस्तार। जिस तरह बगीचे की दीवार पर विस्टारिया की बेल जड़ जमाकर एक ही स्थान पर अटकी होती है, उसी तरह मनुष्य भी अपनी विशेष शताब्दी से बंधा होता है, जिससे न तो वह भागकर आगे जा सकता है न पीछे। यद्यपि मनुष्य अभी स्वयं अपने प्रारब्ध को नहीं जानता, फिर भी एक दायरे में सीमित अपने कालबिन्दु पर खड़े-खड़े उसकी दूर तक भूतकाल को देख सकने की शक्ति बढ़ती जा रही है और यहां तक कि नक्षत्र-लोक के भविष्य की धुँधली रूप-रेखाएँ भी उसे और अधिक साफ दिखाई देने लगी हैं। मनुष्य शून्य में टँगी बेल की तरह समय

के विस्तार के साथ-साथ शायद कभी नहीं चल सकेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि एक मस्तिष्कहीन बेल अगणित उपायों से अपनी स्थिरता की सीमाओं को झुठला देती है, यह बहुत कुछ सही हो सकता है कि मनुष्य भी शायद धीरे-धीरे एक नये आयाम (डाइमेंशन) पर काबू करता जा रहा है—एक ऐसा आयाम, जो मनुष्य को वह विवेक प्रदान कर सकता है जिसे उसने मुश्किल से अभी समझना ही शुरू किया है।

जीवन को कितने आयामों और कितने माध्यमों से होकर गुजरना होगा? अन्तिम रहस्य को पाने के लिए, मनुष्य को नक्षत्रों के बीच होकर जाने वाले कितने मार्गों से होकर जाना पड़ेगा? यात्रा कठिन है, असीम है और कभी-कभी असम्भव भी लगती है, परन्तु यह सब-कुछ, हम में से कुछ को इस यात्रा पर रवाना होने से नहीं रोक सकता। अतीत में क्या कुछ हुआ या उन घटनाओं का कारण क्या था, इस बारे में हम इससे अधिक निश्चित रूप से कुछ नहीं जान सकते कि भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है। हम इस कारवाँ में शामिल हो गए हैं। आप कह सकते हैं कि शुरू से नहीं, किसी एक जगह से शामिल हुए हैं। जहाँ तक हम जा सकते हैं, चलते जायेंगे, परन्तु हमारे ज्ञान की जो तृष्णा है वह सब हम केवल एक जन्म में देख नहीं सकते, सीख नहीं सकते।

जो पाठक मेरे साथ इस यात्रा पर रवाना होंगे उन्हें मैं चेतावनी देता हूँ कि इस पुस्तक के निबन्ध मार्ग-दर्शन के लिए संगृहीत नहीं किये गए हैं, बल्कि मस्तिष्क की गुप-चुप खोजों के परम्पराहीन जैसे रिकार्ड के रूप में पेश किये जा रहे हैं, ऐसे मस्तिष्क की खोजों के, जिसने विज्ञान के भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर इस विश्व के चमत्कारों को खोजने, समझने और उनसे आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कई दृष्टियों से यह एक ऐसा असम्बद्ध रिकार्ड है जिसमें आशा और आशंका घुली-मिली है, क्योंकि यह समय के साथ जूझते रहने वाले व्यक्ति की समय-समय पर लिखी टिप्पणियों से तैयार हुआ है। अब जब मैं इन सबको एक साथ रखकर देखता हूँ, तब मेरी समझ में आ रहा है कि इनमें प्राचीन यूनानियों द्वारा कल्पित चार तत्त्वों का समावेश है: पृथ्वी और उसके अन्दर की अग्नि जिसे हम जीवन कहते हैं, जल और आशा का अमूर्त सार—आकाश, वायु, विज्ञान इनका विश्लेषण कर सकने में असमर्थ प्रतीत होता है फिर भी मानवीय स्वप्न का निर्माण इन्हीं से हुआ है।

मैं आगे की ओर भी गया हूँ और पीछे भी, मेरे लिए यह एक असीम यात्रा रही है। जो लोग मेरे साथ चल रहे हैं उन्हें सामान्य रूप से विज्ञान पर

दृष्टिपात करने की आवश्यकता नहीं है, यद्यपि मैंने शक्ति-भर प्रयत्न किया है कि तथ्यों में कोई त्रुटि न रहने पाये। मैंने यह रिकार्ड, उस एक आदमी के विचारों के रूप में पेश किये हैं जिसने अपनी समकालीन वैज्ञानिक विधियों की सीमाओं के भीतर रहकर अनुसन्धान किया है। मुझे प्रारम्भ में ही स्वीकार करना होगा कि कुल मिलाकर यह एक हद तक मेरी खोजों का ब्यौरा नहीं, बल्कि मेरे अज्ञान की स्वीकृति है और एक ऐसे प्रकाश की रेखा है जोकि मान-सम्मान का बोध न रहने पर कभी-कभी किसी व्यक्ति में चमक जाती है। इस पुस्तक के दूसरे भाग के अन्तिम तीन अध्यायों में मैंने ऐसे चमत्कारों का उल्लेख किया है जिनकी साधारण धरती से अवतारणा की जा सकती है। लेकिन इस बारे में लोगों का दृष्टिकोण कुछ दूसरा ही है। मैं तो अधिक-से अधिक केवल अपने ही मरुस्थल की सूचनाएँ दे सकता हूँ। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि ऐसे मरुस्थल प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने और अलग-अलग होते हैं और यह वही सोचे कि उसके अपने क्षेत्र में क्या अद्भुत बातें देखी जा सकती हैं।

अन्त में, मैं यह कहने का साहस तो नहीं करूँगा कि मैंने बेकन के शब्दों में ब्रह्मांड का सही या कोई संगत रूप प्रस्तुत कर दिया है। मैं तो केवल यही कह सकता हूँ कि यह मेरी निजी कल्पना के ब्रह्मांड का एक अंश है; ऐसा ब्रह्मांड, जिसमें होकर एक लम्बी और अधूरी यात्रा की गयी है। सोलहवीं शताब्दी के समुद्र-यात्रियों के वर्णनों की भाँति विचित्र जन्तुओं या विकट विचारों अथवा [illegible] लोगों के कारण यदि मेरा वृत्तान्त अव्यवस्थित हो गया है तो यह उससे अधिक कुछ नहीं है जो मेरी आँखों ने देखा है और मन ने हृदयंगम किया है। इस विश्वरूपी टापू में हम सब किसी ध्वस्त जहाज के यात्रिक हैं, इसमें से एक को जो दिखायी देता है, प्रायः वही दूसरे के लिए अन्धकारपूर्ण और अस्पष्ट होता है।

२. नदी का प्रवाह

यदि हमारे इस ग्रह में कहीं जादू है तो वह जल में निहित है। जल में होने वाली थोड़ी-सी हलचल भी, जैसी कि इस समय मेरे दफ्तर के सामने की सपाट छत पर एक बरसाती तलैया में हो रही है, छान-बीन के लिए मुझे खिड़की तक खींच लाने को काफी है। हवा की एक हलकी लहर शायद अपने-आप को जीवन प्रदान कर रही है। मुझे लगातार यह अनुभूति होती है कि शहर की किसी एक छत पर मैं शायद किसी समय एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चमत्कार देखूँगा। देखूँगा कि जंग लगे नलों के ढेर और टेलीविजन के पुराने एरिअलों से अचानक, सचमुच जीवन फूट निकला है। मैं चकित होकर देखता हूँ कि एकाएक एक जल-झींगुर आया और हरी काई के ढेर में डुबकी लगा तैरने लगा। विरल भाप, जंग, गीला अलकतरा और धूप आश्चर्यजनक रूप में, मन की भाँति, एक भभका बन गये हैं। इनसे ऐसी गन्ध-युक्त छायाएँ बाहर आती हैं जो सबकी निगाहें बचा कर, वास्तविक आकार ग्रहण करने की धमकी-सी देती हैं।

संभवत: जीवन-काल में केवल एक बार ही कोई व्यक्ति अपनी देह की कारा से दूर निकल भागता है। यदि वह भाग्य का धनी हुआ तो एक बार अपने जीवनकाल में ही धूप, हवा और बहते पानी में इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि सृष्टि के सम्पूर्ण कल्प, बिना किसी बेचैनी के पहर भर में बीत जाते हैं; वे कल्प, जिन्हें पर्वतों और रेगिस्तानों ने गुजरते देखा है। मन उन पुराने मूलाधारों और अस्पष्ट टपकनों और गतिविधियों के बीच शुरू हुए अपने आदिकाल में गहराई से पैठ गया है, जिन्होंने निर्जीव चीजों में भी हलचल पैदा कर दी थी। परियों के अभिमंत्रित घेरे की भाँति, जिसमें एक बार प्रवेश करने के बाद

मनुष्य जब जागता है और देखता है कि केवल एक ही रात्रि में सारी शताब्दी बीत गई है, इस रहस्य की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि इसका साधारण जल से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जरूर है। इसका सार अंश विश्वव्यापी है, यह अतीत का स्पर्श करता है, और भविष्य की तैयारी करता है, यह ध्रुवों के नीचे गतिमान है और वायुमंडल की बुलन्दियों में घूमता फिरता है या कभी हिमकण बन कर अद्भुत रूप ग्रहण कर लेता या फिर सजीव वस्तु की त्वचा को नोच कर समुद्र द्वारा ढाली गयी चमकीली हड्डी में बदल देता है।

जिस बात की ओर मैं इशारा कर रहा हूँ उसका अनुभव मुझे कई साल पहले वैज्ञानिक खोजबीन के सिलसिले में सुदूर पश्चिमी प्रदेश में, संयोगवश पानी में विचित्र ढंग से सीझने—परिसरण (Osmosis) के कारण आकार का विस्तार—का हुआ। आपने शायद अपने अन्दर एक सम्पूर्ण जलधारा की टेढ़ी-मेढ़ी चलनाली बहती उपधाराओं का, या किसी प्रकार की अलौकिक अनुभूति के कारण अपनी फैली उंगलियों में बर्फीले हिमनद के झरने के स्पर्श का अनुभव नहीं किया होगा और न बीहड़ पहाड़ों के घिसे-कटे मलबे से होकर खाड़ी की ओर बहते जाने का ही अनुभव किया होगा। मैकनाइट ब्लैक नामक कवि ने "हाथ-पैरों में गतिमान . . . पानी के साथ ध्रुव-से-ध्रुव को छूते जाने" की बात कही है। उसके अन्दर यह भाव था तो, और यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के अनुभव निराले नहीं होते, मगर होते मुश्किल से हैं। अनुभव की व्यापकता का यह रूप जिसे लोग तभी स्वीकार करेंगे जब वे समुद्री घोंघे के पास अपना कान रखेंगे, एक किताबी प्रोफेसर की आत्म-स्वीकृति के इस रूप पर वे मुस्करा उठेंगे। स्थिति इस तथ्य से और भी बिगड़ जाती है कि बचपन में एक मानसिक आघात की वजह से मैं तैरना नहीं सीख पाया, और नदियों, तालाबों आदि को देखकर संकुचित हो उठता हूं और बचने का प्रयत्न करता हूँ एक प्रकार से सम्भवतः यही वह चीज थी जिसके कारण मुझे वह अनुभव हुआ।

राकीज पर्वतमाला से नीचे उतर, ऊँचे मैदानों में बहती मिसौरी की ओर जाती हुई प्लैटे नदी एक कौतूहलजनक धारा है। वसन्त में बाढ़ के दिनों यह नदी मील भर चौड़ी होकर खेतों को निगलती और पुलों को बहाती, गरजती विनाश की धारा बन जाती है। वैसे सामान्य रूप से यह छोटी-छोटी अलग-अलग और रुक-रुक कर टेढ़ी-मेढ़ी बहने वाली धाराओं का एक सिलसिला भर होती है। ये धाराएँ, किसी प्राचीन हिम-युग की नदी के थाले में रेत और कंकरों के विशाल तिकोने ढेरों से होकर बहती हैं। धँसती हुई रेत और जगह बदलते हुए छोटे-छोटे टापू उस पर हावी रहते हैं। इसके ऊपर घास के मैदानों

की कड़कती धूप गर्मियों भर आग बरसाती रहती है। 'मील भर चौड़ी और इंच भर गहरी' प्लैटे नदी अपने तट के किनारे-किनारे चलने वाले, धूप से व्याकुल, हर यात्री को शरण देती है। यह बात उन ऊँचे मैदानों में तो खास तौर पर सही है जहाँ प्लैटे नदी, शहरों की लम्बी यात्रा शुरू करने से पहले बहती है।

मुझे इस प्रकार का अनुभव जिस कारण से हुआ उसका इस वर्णन से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब मैं एक विलो की झाड़ी को पार कर एड़ी-भर गहरे जल से होकर एक छायादार टीले की ओर जा रहा था, उस समय मेरा इससे सामना हुआ। वैज्ञानिक कारणों से इस प्रदेश के काफी बड़े इलाके में मैं पैदल घूमा हूँ, और मुझे उन विभिन्न प्रकार की हड्डियों की जानकारी है जो कंकड़ों की पिच-कारी के साथ गड़गड़ाहट के साथ ऊपर आ जाती हैं, और उन कैलसिडोनी पत्थरों से बने नुकीले बाणों के से सिरों की भी जानकारी है जो कभी-कभी गीली रेत में से समय-समय पर बाहर आ जाते है। उस दिन आसमान को देखकर, विलो की झाड़ियों और उथले में ताने-बाने बुनते, कल-कल ध्वनि करते, खाड़ी की ओर बहते पानी को देखकर, मीलों पैदल चलने से जबकि मेरा गला सूखा जा रहा था, एक नये विचार के कारण मेरे भीतर विचित्र सी हलचल होने लगी थी : कि मैं उतराने जा रहा हूँ, कि मैं एक महान् साहसिक काम करने जा रहा हूँ।

मैं समझता हूँ कि यह विचार मेरे मन में धीरे-धीरे उभरा। मैंने अपने वस्त्र उतार दिये थे और प्रसन्न मन से कुछ सरकंडों के बीच के गड्ढे के कारण पानी में लुढ़कता फिर रहा था, उसी समय मेरे मन में यह जबरदस्त इच्छा पैदा हुई कि उस बहते जल के ऊपर हौले-हौले बहने वाले पानी के साथ ही बह निकलूँ। घुटने जितने गहरे पानी में खड़े होकर संकोचभरा मेरा यह मानसिक द्वन्द्व इस भावहीन, खुली आधुनिक दुनिया के लोगों को उपहासास्पद लगेगा, वस्तुतः बात ऐसी नहीं थी। बचपन की एक दुर्घटना के कारण मेरे भीतरी मन में भय-सा समाया हुआ था, इसके अलावा मुझे तैरना भी नहीं आता था और इंच भर गहरी यह नदी गड्ढों और धँसती रेत के कारण खतरनाक भी है। इसके भटकते भ्रामक रास्तों में मौत होना कोई बहुत बड़ी बात न थी। इस प्रकार के सभी बड़े वीरानों में, जहाँ न तो जमीन का ही प्रभुत्व होता है और न पानी का, जहाँ आस-पास की झाड़ियाँ बिलकुल अकेली होती हैं, जहाँ कोई आता-जाता है नहीं, जहाँ मुसीबत में पड़ा हुआ कोई व्यक्ति कितना ही चीखे-चिल्लाये, उसकी सुनने वाला कोई नहीं होता।

पानी में चुपचाप खड़े होकर, पैर के पंजों से अलग होती रेत को महसूस करते हुए मैंने इन सब बातों पर गौर किया और आसमान की ओर मुँह किये

उतराने की स्थिति में पीठ के बल पानी में लेट कर अपने-आप को आगे की ओर धकेल दिया। आसमान मेरे ऊपर घूमने लगा। जैसे ही मैं मुख्य धारा में पहुँचा तो क्षण-भर के लिए मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं महाद्वीप की विशाल ढालू सतह पर फिसलता हुआ नीचे जा रहा हूँ। उसी समय मैंने यह भी महसूस किया कि मेरी उँगलियों की पोरों में एल्पाइन सोतों के नुकीले पत्थरों का स्पर्श हो रहा है और खाड़ी की आरामदेह गर्मी मुझे दक्षिण की ओर खींच रही है। मेरे साथ ही मेरे मुँह में घुसकर मुझे अपना आस्वादन कराते हुए, छलछलाते सोतों की मेरे नीचे की रेत फुहारों के रूप में अपने-आप में महाद्वीप की विशाल काया-सी, वह नदी की ही तरह, कण-कण करके पूरी पहाड़ की पहाड़ बन कर समुद्र की ओर बह रही थी। मैं एक प्राचीन समुद्र के ऐसे थाले से होकर बहा जा रहा था जो पृथ्वी के किसी काल में प्राकृतिक उथल-पुथल से ऊपर उठ आया था और जिसमें कभी विशाल सरीसृप खेला करते थे, मैं समय के व्यवधान को भूलता जा रहा था और बादलों से आच्छादित पर्वत-मालाओं को दूर विस्मृति के गर्भ में धकेलता आगे बढ़ रहा था। मैंने अपने पास के किनारों को एक क्रेफिश के ऐंटेना की नज़ाकत से छुआ और महसूस किया बड़ी-बड़ी मछलियाँ अपने-अपने काम पर तैरती फिर रही हैं।

अपने पर्वतीय दुर्गों में 'बीवर' द्वारा काटी हुई लकड़ी के पास से बहता हुआ गुजरा, ऐसी उथली जगहों से होकर फिसला जहाँ प्रेयरी स्कूनरों की टूटी धुरियाँ और प्रागैतिहासिक हाथियों की कीचड़ से सनी हड्डियाँ दबी पड़ी हैं। मैं सूर्य की रोशनी से उत्पन्न गर्म और उफनते खमीर से होकर जीवित बहता जा रहा था या गुप्त रूप से छायादार झाड़ियों के बीच बहुत धीरे-धीरे बहता चला जा रहा था। मैं पानी था और न बताई जा सकने वाली कीमियागिरी था जो पानी के अन्दर पनप कर आकार ग्रहण करती है, लिसलिसी जेलियाँ, जो सूर्य की अभिवर्द्धन की महान् शक्ति के कारण गलमुच्छों वाली विशाल मछलियों के मुँह की शक्ल के रूप में ऐंठती-रेंगती और तेजी से ऊपर को उछलती हैं या उसी अन्धकार में विलीन होकर समाप्त हो जाती हैं जिससे वे पैदा हुई थीं। कछुए और मछली और अपने-अपने स्थान से मेढकों का टर्राना यह सब पानी का तरल फैलाव है, उस वर्णनातीत और तरल किण्वन (Brew) का केन्द्रीभूत होना है, जैसा कि मनुष्य स्वयं है—जो कई अलग-अलग अनुपातों में लवण, धूप और समय के योग से बना है। इसके कई रूप हैं पर सबके मूल में जल है। अन्त में मैं रेत के एक किनारे पर धीरे से टकराया और लकड़ी के एक कुन्दे की तरह गिर पड़ा, मैं उठने लगा तो मेरे पैर लड़खड़ाने लगे। मुझे एक बार फिर, शरीर के उस विद्रोह का अनुभव हुआ जब जीव जल से

निकल कर सूखी जमीन की आधारहीन तीखी हवा में आया था, एक बार फिर जीव को अपने आदि तत्त्व से सम्बन्ध तोड़ने की अनिच्छा का अनुभव हुआ। आदितत्त्व जल, जो इस समय काल-रेखा के इस सुदूर बिन्दु पर भी प्रत्येक जीवित प्राणी को शरण देता है और उसकी काया के दस में से नौ भाग का निर्माण करता है।

जहाँ तक मानवों का सम्बन्ध है, वे क्या हैं ? वे अगणित छोटे-छोटे अलग-अलग जलाशय हैं जिनमें झुण्ड-के-झुण्ड सूक्ष्म जीवकोशों की अपनी-अपनी दुनिया बसी हुई है, परन्तु यह एक रूप है जो कि जल ने मुख्य प्रवाह की पहुँच से दूर रह कर अपनी गतिविधि के लिए चुना है। मैं भी तो एक सूक्ष्म ब्रह्मांड था जिसमें नाले बहते और मेरे स्वरचित रहस्यमय सूक्ष्म जीवों द्वारा कुतरी लकड़ियाँ उतराती थीं। मैं तीन-चौथाई जल था और अपनी शिराओं की मन्द धप-धप के अनुसार कभी उठता, कभी डूबता। यह मन्द धप-धप उस शाश्वत स्पन्दन जैसी ही है जिसकी एक धड़कन के साथ समुद्र की गहराई से हिमालय उठ आया था और उसके बाद की दूसरी धड़कन इस सबको ले डूबेगी।

थोरो ने वाल्डन-पौण्ड नाम के तालाब में एक प्रकार की मछलियों को देखकर, अपनी दिव्य दृष्टि के एक क्षण में उन्हें प्राणीय-जल (Animalized water) कहा था। अगर उसे भूगर्भ विज्ञान की वह सारी जानकारी प्राप्त होती जो उसके जीवनकाल के बाद से अब तक इतनी मेहनत से जमा की गई है तो वह कुछ और आगे चला गया होता और प्रसन्नता के साथ पता कर सकता था कि कुछ खास किस्म के मेंढकों की आदतों में ग्रह-पिंडों की गड़गड़ाहट और डकार लेने की ध्वनि सुनने का जो आनन्द उसे आता था उसमें पृथ्वी के अन्दर उस अज्ञात दबाव के संकेत थे जिसने समुद्र-तल को सँवार कर पर्वतों की ऊँचाइयों में बदल दिया। थोरो को यह सब जानकारी होती तो वह अपने अन्तर में एक ऐसी श्रवणेन्द्रिय का विकास कर सकता था जिससे वह क्रिटेशस-युग के समुद्री तट की लहरों की आवाज सुन सकता था, जहाँ आजकल 'कन्सास प्रान्त' में गेहूँ की फसलें लहलहाती हैं। ऐसा ही हो वह यह जान गया होता कि प्राचीन अस्थि-अवशेषों की खोज करने वालों ने जितनी अवधि के जीव-विकासक्रम पर प्रकाश डाला है उस सारे समय में, उसके प्राणीय-जल ने कल्प-कल्पांतरों में, सहस्राब्दी के अन्तर पर स्पन्दित होने वाले हृदय की धड़कनों के साथ, रूप और आकार बदले हैं। निचले महाद्वीपों के दलदलों में 'जल-थल-चारी' जीव पनपे और फले-फूले। पृथ्वी की पपड़ी के सतुलन में परिवर्तन होने से, आकाश छूने वाली लम्बी पर्वत-श्रेणियों का जन्म

हुआ और तभी शीतल होते घास के मैदानों का और स्तनपायी जीवों का क्रम आरम्भ हुआ ।

कुछ समय पहले, सर्दी के मौसम में भारी कपड़े पहन कर मैं उसी 'प्लैटे' की एक सहायक नदी के किनारे कई मील घूमा, जिसमें कुछ वर्ष पूर्व मैं उतराता हुआ गया था । जमीन बिलकुल वीरान और बर्फ से ढकी हुई थी । नदी की धाराएं जमी हुई थीं और हिमाच्छादित धरती की पृष्ठभूमि में दलदली जमीन के ऊपर बिलो की झाड़ियों से ऐसी सीधी खड़ी रेखाओं की श्रृङ्खला बन गयी थी, जिन्हे रौंदते हुए चलने पर विचित्र प्रकार का दृष्टि-भ्रम होता था, और चक्कर-सा आने लगता था । जमे हुए पानी की सतह में जिस चीज पर मेरी नजर पड़ी, उसे देखकर मैं चौंक पड़ा, एकाएक विश्वास नहीं हुआ, मै रुका और अपनी आंखें मलीं, घास के मैदानों की तीखी हवा से मेरे पैरों के पास का हिम उड़ गया था और उसके नीचे साफ पारदर्शी बरफ चमक रही थी । इसके बीच एक विचित्र हरी वस्तु पर मेरी निगाह अटकी थी, इसमे सन्देह की कोई गुन्जाइश नहीं थी ।

हवा से बिखरी बरफ में मजबूती से फँसा हुआ, अपने सभी गलमुच्छों को दयनीय ढंग से फैलाये हुए एक बड़ा-सा पहिचाना हुआ चेहरा ऊपर मेरी ओर देख रहा था । वह चेहरा कैटफिश नामक एक मछली का था जो उन करवट बदलती धाराओं की प्राणी थी । पीले अन्धकार मे रहने वाली ये मछलियाँ, मेरी महान् जल-यात्रा के दिन मेरे इर्द-गिर्द और नीचे सब जगह मौजूद थीं । यह कहना मुश्किल है कि जब तापमान लगातार गिरता जा रहा था तब यह मछली किस उज्ज्वल स्वप्न की खातिर यहीं हाथ-पैर मारती तैरती रही । या फिर शायद वह एक रुकी धारा मे फँसी अपने चारों ओर बर्फ जमने तक तैरती रही हो । कुछ भी हो, अब वसन्त के आगमन तक वह वहीं पड़ी रहेगी ।

उसी क्षण जैसे ही मैं वापस जाने के लिए मुड़ा, मुझे लगा कि गलमुच्छों मे भरे उस सर्द चेहरे ने जैसे मेरी भर्त्सना-सी की या शायद अपने बच्चों के लिए, यह नदी की पुकार थी । इस तरह जो काम मुझे करना पड़ता है उसे मै वैज्ञानिक खोज का काम कह लेता हूँ क्योंकि ऐसे अवसरों के लिए सुरक्षित यह एक अच्छा सुविधाजनक मुहावरा है । मैंने तय किया है कि मैं इस मछली को उसके चारों ओर जमी बर्फ को काटकर घर ले जाऊँ । मेरा विचार उसे खाने का नहीं था । मैं तो सिर्फ इस महज इच्छा से प्रेरित हुआ था कि ऊँचे मैदानों की मछलियाँ, खासकर इस किस्म की उन मछलियों की जीवनी-शक्ति की परीक्षा करूँ, जो अपने-आप को आक्सीजन-हीन तालाबों या शीतकालीन बर्फानी तूफानों में उड़े हिम से ढकी, नदी के घुमाव से बनी, चन्द्राकार झीलो

मे कैद कर लेती हैं। मैंने उस मछली के चारों ओर की बर्फ को बहुत ही सावधानी से काटा और बर्फ समेत कार के अन्दर रखे एक डिब्बे में डाल दिया और फिर घर की ओर रवाना हो गया।

आगे चलकर जो एक अद्भुत पुनर्जन्म साबित हुआ, दुर्भाग्य से मैं उसकी प्रारम्भिक अवस्थाओं को देखने से वंचित रह गया। सर्दी लग जाने और देर तक कार चलाने की वजह से थक कर चूर हो जाने से मैंने पिघलती बर्फ और पानी से भरे उस डिब्बे को अपने मकान के तहखाने में रख दिया। मैंने सोचा था कि उसमें रखी मुर्दा मछली को मैं दूसरे दिन या तो फेंक-फांक दूंगा या जाँच के लिए उसकी चीर-फाड़ करूँगा। एकाएक यों ही दृष्टि डालने पर उसमें जीवन का कोई लक्षण नहीं दिखायी देता था।

कुछ घण्टों बाद जब मैं तहखाने में उतर रहा था तो, डिब्बे के अन्दर कुछ हिलने-डुलने की आवाज सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। नीचे आकर मैंने उस बर्तन के अन्दर झाँका। बर्फ पिघल गई थी। मूछों जैसी जीवित स्पर्शेन्द्रियों से घिरा, बाहर को आया हुआ एक बड़ा-सा मुँह मेरे सामने था। उसके गलफड़ धीरे-धीरे काम कर रहे थे। उनसे उठकर चाँदी जैसे चमकीले बुलबुलों की धारा ऊपर को उठ कर बाहर निकल रही थी। निरन्तर खुली रहने वाली उसकी आँखें जैसे विरोध प्रकट करती मुझे ताक रही थीं।

"मुझे एक टंकी चाहिए" उसने कहा। यह वाल्डेन पिकरील मछली नहीं थी। वह थी पीलिमायुक्त हरे रंग की, कीचड़ खोदने वाली, क्रोधी स्वभाव की ऐसी मछली, जो बाढ़, अकाल और तूफानों में रहने की अभ्यस्त थी। वह ऊँचे महाद्वीपों और उससे होकर बहते जल में रहने वाली एक चुनीदा जीवित-वस्तु थी। यह कैटफिश घास के मैदानों में उन बर्फानी तूफानों में भी जीवित रही थी जिनमें दूसरे पशु खड़े-खड़े शीत में जम कर नष्ट हो गये थे।

मैंने सम्मानपूर्वक कहा, "मैं टंकी का प्रबन्ध करूँगा।"

उस वर्ष जाड़े भर, वह मेरे साथ रही और मेरे पास से उसका जाना, उसके दृढ़ और स्वतन्त्र स्वभाव के अनुकूल ही था। वह बसन्त के दिनों, शायद प्रवास पर जाने की एक सहज इच्छा से या शायद एक गहरी ऊब से भर उठी थी। ऐसा भी हो सकता है कि अपने मस्तिष्क में किसी खोई स्मृति के जाग जाने पर उसने, दूर प्लेटे नदी के किसी रेतीले स्थान से बहते पर्वतीय जल की, गिरती-धारा की आवाज सुनी हो। जो भी हो, उसे किसी ने पुकारा था और वह पुकार सुन, चल दी। एक रात जब उसके आस-पास कोई नहीं था उसने टंकी के बाहर छलाँग लगा दी। दूसरे दिन, मैंने उसे फर्श पर मृत पड़ा पाया। एक आदमी की तरह या यों कहना चाहिये कि एक मछली की तरह ही उसने

अपना दाँव फेंका था। अगर स्थान उचित होता तो इस तरह का दाँव लगाना बेवकूफी न होती। घास के मैदानों में बहने वाली जलधाराएँ कहीं उथली है तो कहीं गहरी, तो कहीं ऊपर से खुश्क जमीन के अन्दर बहती हैं। ऐसी धारा के सूखते हुए उथले जल में जिस मछली को भान हो गया है कि वह बन्द घेरे मे फँस गई है और उसमें बन्द घेरे के बाहर छलाँग लगाने की इच्छा भी वर्तमान है तो वह समय रहते कूद कर एक बार फिर मुख्य धारा में पहुँच जीवित बच सकती है। मैंने उस मरी हुई कैटफिश की ओर देखते हुए सोचा उसकी एक छलाँग में उसके पुरखों के जीवन-काल के दस लाख वर्ष निहित थे। दस लाख वर्षों की वह अवधि जिसमें जीवन-रूपी जल घास के मैदानों में उगने वाली सूरजमुखी के पौधों से होकर ऊपर चढ़ा और प्यास बुझाते हुए प्राग्-ऐतिहासिक भीमगज (mammoth) के विशाल स्तम्भों जैसे पैरों में बाहर भीतर लिपटता गया।

"तुम्हारे कुछ निकट सम्बन्धी हवा मे साँस लेने का प्रयोग कर रहे थे", मैंने उसे उठाते हुए जैसे शून्य से कहा। "अच्छा मान लो यदि हम दस या बारह लाख वर्षों बाद कपास-वनों में फिर मिलें तो ?"

यह कहते समय मुझे उसका अभाव कुछ खल रहा था। मेरे लिए उसमे एक प्रकार की खोयी हुई पुरातन महत्ता थी जो जलीय भाईचारे से पैदा होती है। हम दोनों उस कालहीन किण्वन (ferment) के प्रक्षेप थे और साथ ही किसी ऐसे महत्तर एकता-सूत्र से जुड़े थे जो हमसे परे कहीं अनन्त दूरी पर स्थित है। मछलियों के डैनों में, सरीसृपों के पैरो में मैंने स्वयं अपने आपको चलते देखा है—अपने शरीर के किसी भाग को, यानी ऐसे भाग को जो मेरे वर्तमान आकार में अभी प्रकट नहीं हुआ है। जब मैंने इन बातों के बारे मे लिखने और उन्हें प्रकाशित करने की हिम्मत की तो लोगों ने मुझे कटु पत्र लिखे और मनुष्य पर विश्वास की कमी के लिए मेरी कड़ी आलोचना की। ऐसा लगता है कि अपने आकार और विचारों को छोड़ कर ये लोग बाकी सभी पर विश्वास करते हैं। ये लोग ईश्वर को एक व्यापारी की समझ के दायरे में बन्द कर देना चाहते है ताकि कहीं 'वह' कोई कल्पनातीत और दहला देने वाली कार्रवाई में न जुट जाये, कहीं वह किसी आकस्मिक विचार से प्रेरित होकर मनुष्य से कहीं सुन्दर जीव का निर्माण न कर दे। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं समझता हूँ कि प्रकृति में ऐसा कर सकने की सामर्थ्य है और जलप्रवाह का एक हिस्सा होने के नाते मुझे उस नये जीव से कोई ईर्ष्या नही होगी, जैसे कि एक मेंढक को सरीसृप से या एक प्राचीन लंगूर को किसी मानव से नहीं होती।

हर वसन्त ऋतु के दिनों नमी वाले चरागाहों और गड्ढों में, मैं एक कर्णकटु वृन्दगान सुनता हूँ जो दुनिया में सभी को बार-बार दुहराये जाने वाले इन बोलों की तरह सुनाई देगा कि "हम यहाँ हैं, हम यहाँ हैं, हम यहाँ हैं !" और वे वहाँ सचमुच हैं लेकिन मेंढकों के रूप में। ये नन्हें जीव कितने आत्म-विश्वासी हैं। मुझे शक होता है कि हमसे किन्हीं विशाल कानों को, सृष्टि मे अपने योगदान और अपने भविष्य के बारे में मनुष्य की आशावादी उद्घोषणाएँ भी इसी कर्णकटु वृन्दगान की गूँज-सी सुनाई देती होंगी, ऐसी गूँज जो रात्रि के अन्धकार में कुछ ही दूर तक जाती है। यह तो इसकी निकटता है जो कि कानों को अच्छी नहीं लगती। पहाड़ों की ऊँचाइयों से या सन्ध्या-समय एक दलदल में, दूसरी ओर उनींदी आवाजों के साथ मिल-जुल कर ये आवाजें उतनी बुरी नहीं सुनाई देतीं। अपनी टर्र-टर्र में, चहकने, चहचहाने के स्वरों मे वे सब एक ही बात कह रहे हैं।

कुछ समय तक गौर से सुनने के बाद एक कुशल श्रोता मनुष्य की आवाज और घास के टिड्डों की लयपूर्ण ध्वनि में अन्तर कर सकता है। खरगोश के तालहीन स्वर को छोड़ दीजिये, झींगुर के एक ही स्वर में गाये जाने वाले शरत्कालीन राग पर गौर कीजिये और अपने विचारों में किसी एक की आवाज को पहले से कोई महत्त्व न देकर उन सबमें एक गम्भीर आनन्द प्राप्त कीजिये। जब ये सब आवाजें खामोश हो जाती हैं और जल-प्रवाह स्थिर हो जाता है, कठिन शीत से जमी हुई नदी के किनारे-किनारे जब कोई चीखता नहीं, चिल्लाता नहीं, गुर्राता नहीं, तब शून्य की विशाल मस्तिष्कहीनता आत्मा के ऊपर छा जाती है। उस दबे-कुचले बर्फानी वीराने में, प्रतिबिम्बित होते नक्षत्रों के बीच दूर कहीं गोपनीय जल-रूप गतिमान है, परन्तु प्रतीत होता है कि वे बिना जीवन के एक ऐसे प्रारब्ध की ओर भाग रहे हैं कि जिसमें समस्त आकाश (Space) शायद किसी छितराये हुए विकिरण के दुग्ध-धवल शीत से आवेष्टित है।

ऐसे ही समय में, जब, उजाड़ दलदलों को पार कर, ठंडी हवा के सीधे झोंके चलते हैं, और बर्फ उड़-उड़ कर लगातार लहरों के रूप में यात्री के शरीर से टकराती है तब कल्पना के किसी चमत्कार से मुझे बहुत अच्छी तरह नदी पर अपनी ग्रीष्मकालीन जलयात्रा की याद आती है। मूल पक Mother Ooze) से अपने हरे रूप ग्रहण करने, कैटफिश के रूप में लम्बे साँस लेने और मीनिका के रूप में अपनी सर्पिल गतियों की जिलेटिन के से मूर्त रूप धारण करने की मुझे याद है। और जब मैं इस श्वेत आच्छादन पर

से होता हुआ चल रहा हूँ तो यह जल का ही जादू है जो मेरे लिए एक अंतिम चिह्न छोड़ जाता है।

जीवन के विभिन्न रूपों को निर्धारित करने वाले पदार्थ और शक्ति की, तथा अस्तित्व के लिए संघर्ष की लोग बहुत चर्चा करते हैं। यह सच है कि इन दोनों बातों का अस्तित्व है। लेकिन, इससे कहीं ज्यादा नाजुक, समझ से कहीं परे और जल में मछली के डैनों से कही अधिक तीव्रगामी एक ऐसा रहस्यमय सिद्धान्त है जिसे 'जीवगठन' (Organization) कहते हैं और जिसकी तुलना मे जीवन से सम्बद्ध सभी रहस्य पुराने और महत्वहीन हो जाते है। क्योकि यह स्पष्ट है कि जीवगठन के बिना जीवन अपना अस्तित्व कायम नही रख पाता। इतना होने पर जीवगठन एकदम जीवन या प्राकृतिक चुनाव का फल नहीं है। पदार्थ के अन्दर एक चलती-फिरती गहरी छाया की तरह यह एक रंग-बिरंगे अण्डे के अन्दर आँखों के कोयों के रूप में छोटे-छोटे वातायन, या चरागाहों की नन्हीं चिड़िया के गीत के स्वर निर्धारित कर देता है। मुझे सन्देह होने लगा है कि यह सिद्धान्त, जीवन के पैदा होने से पहले जल की गहराइयों में विद्यमान था।

तापमान बढ़ गया है। छोटी-छोटी डंक-सी मारती बर्फानी सुइयों की जगह हिम के तिरते बड़े-बड़े भालों (Flakes) ने ले ली है जो खुले आकाश में स्थित एक विशाल वृक्ष के झरते सफेद पत्ते की तरह हवा में उतराते गिर रहे है। मैंने कार के अन्दर रोशनी जलाकर अपनी आस्तीन पर पड़े बर्फ के एक जटिल गठन के रवे को देखा। उपयोगिता का कोई भी दर्शन, फायदे-नुकसान का कोई भी सिद्धान्त हिम के रवे का स्पष्टीकरण नहीं दे सकता। रात के आसमान में, स्वयं को व्यवस्थित रूप देने के लिए जल ने वाष्प से, विरल शून्य से बाहर सिर्फ एक छलाँग लगाई है। हिम-पपड़ियों के अस्तित्व का उसी प्रकार कोई तर्क-संगत कारण नहीं है जिस प्रकार विकास का, यह तो प्रकृति से परे, उस रहस्यमय छाया-जगत् का प्रेत है, जिस अन्तिम जगत् में (अगर किसी जगत् में कुछ होता हो तो) मनुष्यों, कैटफिशों और हरी पत्तियों के अस्तित्व का स्पष्टीकरण मौजूद है।

३. अतल गहराइयाँ

एक ऐसी अँधियारी दुनिया है जिसमें बहुत कम लोग प्रवेश कर सके हैं और जिसकी अधिकतम गहराई तक जाकर, कोई वापस नहीं लौटा है। वह दुनिया है समुद्र की अतल गहराइयाँ। डार्विन के साथियों ने, इसमें मंडराने वाले अदृश्य आकारों की कल्पना, सम्भवतः खोई हुई पुराजीवक दुनिया के रूप मे की। उस महान् प्रकृतिविज्ञ ने सुदूर स्थानों को आने-जाने वाले समुद्र-यात्रियो के आग्रह के साथ खुद भी इस बात की वकालत की कि उष्ण-कटिबन्ध के समुद्रों के तल में खुदाई का काम किया जाय। गर्म समुद्रों में नीचे की ओर जो जीवन है, उसके बारे में हमारी जानकारी बहुत कम या बिलकुल नहीं है।

कोई भी जीव जिसके बारे में यह समझा जाता है कि वह करोड़ों वर्ष पहले मर चुका है, कोई भी चीज, जिसे किसी बीते हुए भूवैज्ञानिक अवधि की खड़िया में देखने के अलावा किसी जीवित व्यक्ति ने और कहीं नहीं देखा, उसे अपने ही हाथों में जीवित और स्पन्दित होते देखना, लोमहर्षक होगा। उत्तरी अन्धमहासागर-तल की खोज करने वाले पहले वैज्ञानिकों में से एक, सर चार्ल्स टामसन को ऐसा ही अनुभव हुआ था। तब से अब तक कुछ ही लोग फॉसिल-लोक के किसी जीवित निवासी को छू सके हैं या देख पाये हैं। यह एक ऐसा रोमांचक अनुभव था, जिसे कभी भुला नहीं जा सकता। इस खोज के अप्रत्यक्ष प्रभाव से दुनिया के सबसे बड़े समुद्री अभियान का संगठन हुआ और सर चार्ल्स टामसन को इसका नेता बनाया गया। बहुत समय बाद, अपनी खोज के बारे मे भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "वह एक छोटे से लाल रंग के केक जैसा था। और छोटे गोल लाल-केक की ही तरह वह मेरे हाथों में हांफने-सा लगा।

उसके शरीर से होकर विचित्र तरंगें-सी उठ रही थीं। उस नन्हें विचित्र दानव को उठाने-सँभालने से पहले, मुझे अपनी सारी शक्ति और हिम्मत इकट्ठी करनी पड़ी थी।"

एक सामान्य व्यक्ति के लिए, वह छोटा गोल-गोल लाल केक एक समुद्री प्राणी 'सी-अर्चिन' से ज्यादा कुछ न होता और उसमें जो स्पंदन हो रहा था, उसका अर्थ केवल इतना होता कि वह 'सी-अर्चिन' जीवित है। तो भी सामान्य व्यक्ति की यह राय गलत होती। यह तथ्य निश्चय ही अद्भुत था और वह नन्हा लाल 'अर्चिन' तो और भी हैरत-अंगेज था। यहाँ तक कि उसके स्पंदन का भी महत्त्व है। इस प्रकार के स्पंदन वाला कोई भी जीवित सी-अर्चिन कभी नहीं देखा गया। सभी ज्ञात 'सी-अर्चिन' इसकी तुलना में बहुत स्थिर और तने हुए पाये गये हैं। इस नन्हे जन्तु के शरीर में होने वाला लहरदार स्पंदन इस बात का निश्चित चिह्न था कि यह नन्हा जीव, किसी अधिक चर्मल और लचीले, प्राचीन जीव-वर्ग से सम्बन्धित है।

एक जीवित फॉसिल के रूप में उसे उत्तरी अन्ध महासागर के तले से करीब-करीब एक मील नीचे गहराई से खोद निकाला गया था। 'टास्कारोरा-द्वीप' के छः मील की गहराई की तुलना में आज एक मील की गहराई कोई ज्यादा नहीं है, लेकिन पिछली शताब्दी के सातवें दशक में, यानी सर चार्ल्स के समय में, यह गहराई उस सतह से भी नीचे थी जहाँ पर कि सामान्य रूप से जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जाती थी। उन दिनों समुद्र में तीन सौ कदम से नीचे जो कुछ भी था, वह एजोइक या जीवहीन समझा जाता था—इस तरह की बातें १८४० के दिनों, पहले महान् समुद्री वैज्ञानिक, एडवर्ड फोर्ब्स ने लिखी थीं। अनेक अग्रगण्य खोजकर्ताओं की तरह, आगे चल कर, उसकी बात भी गलत साबित होनी थी फिर भी उसके समय की परिस्थितियों को देखते हुए उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की जा सकती है। उन अज्ञात गहराइयों के शीत, अँधेरे और दबाव की कल्पना भी भयोत्पादक थी। मनुष्य अपने अवचेतन मन में इस धारणा के कारण इस कार्य से बचता रहा कि यहाँ समुद्र-तल पर भी आदिम कीच में सचेतन जीव रास्ता टटोलते हुए आ पहुँचे थे। यह उनके लिए ऐसा पाताल लोक था जहाँ जीवधारियों के होने की कल्पना नहीं की जाती थी और जहाँ की स्थिति पृथ्वी की पहली सघ्य रात्रि के समान थी।

आज हम जानते हैं कि पाताल लोक की इस अतल गहराई में विचित्र आकृतियाँ विचरण करती हैं। इस गहराई में चमकती मायावी आकृति के विशाल मुँह अपने नन्हे शरीर के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को बहते फिरते

हैं, मानो उस घुप-अँधेरे में एक तिरता हुआ सिर शरीर से कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण हो, चिरन्तन रात की उस मितव्ययी व्यवस्था में शरीर के लगभग न होने से भी काम चल सकता हो। यह, एक नजाकत से टटोलती हुई गज भर लम्बी स्पर्शेन्द्रियों या विशाल घूरती हुई आँखों की दुनिया है, ऐसी आँखें, जो दूर स्थित प्रकाश के नन्हें बिन्दु को देख सकती हैं और जुगनू के जैसे काँपते हुए उजाले में उसका पीछा भी कर सकती हैं। लेकिन सर चार्ल्स टामसन के लिए समुद्र की अतल गहराई इन विचरते आकारों के अलावा कुछ और, भूतकाल की दुनिया थी।

लुप्त युगों का मोहक रूप, बहुत समय से मनुष्य को अपनी ओर खींचता रहा है। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि परिवर्तन-काल के मनुष्यों, आकाश-गंगाओं के अध्ययनकर्त्ताओं, और प्रकाश-वर्षों की गणना करने वालों में मानवीय हानि से अछूते किसी एवालोन की, कालचक्र से अप्रभावित दूर किसी द्वीप में वापस जाने की तीव्र इच्छा पैदा हो। यहाँ तक कि विद्वद्वर्ग भी, किन्हीं द्वीपों में या ढलवाँ पहाड़ी चट्टानों से घिरे किन्हीं पठारों में, प्राचीन जीव-जगत् की खोज के विचार से, अपने को दूर नहीं रख पाये हैं। जेफरसन प्रायः एक ऐसे शिकारी की कहानी दुहराते रहे हैं जिसने वर्जीनिया के जंगलों में प्राग्-ऐतिहासिक हाथियों (मैमथ) को चिंघाड़ते हुए सुना था। सन् १८२३ में एक दक्षिण अमरीकी यात्री ने एकबार अपनी दूरबीन से एक ऐसा काल्पनिक दृश्य देखने की चर्चा की है जिसमें उसे दूर एंडियन घाटी में, मैस्टोडोन नामक प्राचीन जन्तु चरते दिखाई दिये थे। (मैस्टोडोन प्राचीन काल का हाथी से मिलता-जुलता ऐसा जानवर है जिसके दाँत कुन्ताग्र की तरह आगे को निकले होते थे।)

लेकिन जब खोजकर्त्ताओं ने इस पृथ्वी के सभी जंगलों के भीतर जाकर देख लिया, सभी प्रकार के जन्तुओं पर नजर डाल ली तो प्राचीन जगत् के जीवों का कहीं पता नहीं चला; और इस प्रकार की खोज उन्नीसवीं सदी के मध्य तक काफी अच्छी तरह से कर ली गई थी। अब सिर्फ विशाल समुद्र की खोज करना बाकी था, ग्रह-लोक की तरह विस्तृत उस समुद्र की, जो थारफिन्न द स्कल क्लीवर के दिनों से मनुष्य के चंचल जहाजों का स्वागत करता रहा है और समय-समय पर उन्हें लीलता भी रहा है। इसकी सतह का तो पता था पर गहराइयाँ अज्ञात थीं। जलपरियों के लोक की इस हरियाली-उदासी में अन-गिनत समुद्री डकैतियों का अपार धन था, अगणित लड़ाइयों के मृतकों की समा-धियाँ थीं। समुद्र के बारे में इस अज्ञान के फलस्वरूप लोगों में समुद्र-सम्बन्धी पौराणिक कथाएँ चल निकली थीं। संध्या-समय दिखने वाले श्वेत हाथ की या

फिर साइरन[1] के गाने की आवाज की जो अपने मधुर-घातक संगीत से समुद्र-यात्रियों को किसी ऐसे द्वीप की भयावह चट्टानों की ओर मौत के दामन में खींच बुलाती जो पौ फटने पर अदृश्य हो जाता। जब मनुष्य की तरुण कल्पनाएँ धीरे-धीरे कम होने लगीं, तब उन अतल गहराइयों के समुद्री दैत्यों, साँपों या प्राचीन जन्तुओं की अफवाहें भर शेष रह गईं।

समुद्र में जल के अन्दर बिछाये हुए तारों या आकर जम जाने वाली चीजों और समुद्र की खुदाई के नये तरीकों से खुरच कर ऊपर लाई वस्तुओं की जाँच के बाद, विद्वानों ने उन विशाल गहराइयों के जीवनहीन होने की कल्पना से हट कर, बहुत-कुछ कानन-डायल की 'खोई हुई दुनिया'[2] की चीजों की तरह विपरीत क्रम के बारे में सोचना शुरू किया। १८७० तक इस विचार के दो पहलू थे। पहला यह सिद्धान्त कि महासमुद्रों के अन्दर बीते हुए युगों के ऐसे जीवित प्राणियों की आबादी है जो अब तक केवल फॉसिल-रूप में देखे गये है, और ये जीव इन गहराइयों में उन विपत्तियों से सुरक्षित बच गये जिनमें उनके पूर्व युग के अनेक वर्ग उथले सागर में नष्ट हो गये थे। दूसरे पहलू में डार्विन के सिद्धान्त से प्रभावित भौतिकवादी विचार-दर्शन की झलक है। इसके अनुसार यह विश्वास किया जाता रहा कि समुद्र की अथाह गहराई के निचले तल पर, दूर-दूर तक फैला प्रोटोप्लाज्म[3] से सम्बन्धित एक अर्धजीवित पदार्थ 'उर्सक्लीम' (Urschleim) है जो चेतन और जड़ के बीच के परिवर्तन को दर्शाता है, और कालान्तर में उसी पदार्थ से अधिक पेचिदा जीवन विकसित हुआ। दूसरे शब्दों में—समुद्र की गहराई के बारे में यह सोचा जाता था कि वहाँ न केवल अतीत युग की जीवन-प्रणाली का रिकार्ड है बल्कि स्वयं जीवन का अन्तिम रहस्य भी वहीं है। संभवतः वहाँ जीवन की सृष्टि अभी भी हो रही हो। सर चार्ल्स टामसन ने अपने 'समुद्र की गहराइयाँ' में, एक उत्साहपूर्ण वक्तव्य में यहाँ तक कहने का साहस किया कि "आधुनिक सागरों के विभिन्न वर्गों की गहराइयाँ, आश्चर्यजनक रूप से, अपने प्राचीन स्तरों की खड़ी-दूरियों के तदनुसार हैं।" निस्संदेह समुद्रों के नीचे, तल पर, जितनी गहराई में वह

---

१. साइरन एक पौराणिक जलपरी है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह मायावी द्वीपों से गीत गाकर जहाजों को अपनी ओर आकर्षित करती है जहाँ वे चट्टानों से टकरा कर नष्ट हो जाते हैं।

२. अंग्रेजी के प्रसिद्ध जासूसी साहित्यकार कानन डायल ने अपनी खोई हुई दुनिया में एक ऐसी जगह की कल्पना की है जहां प्राचीन युग के जीवों की आबादी थी।

३. प्रोटोप्लाज्म एक ऐसा पदार्थ है जिसके गुणों को जीवन कहते हैं।

जीवित-अविच्छिन्न-अन्तरहीन आदिम पंक विद्यमान है उतनी ही कालक्रम की गहराई में भी पड़ा है।

जैसे-जैसे समुद्र की गहराइयों की खोज का कार्य बढ़ता गया, और लोगों ने धीरे-धीरे उस अंधेरी, ठण्डी दुनिया की प्राचीनता को समझना शुरू किया जिसे अतल गहराई की सतह का नाम दिया जाता है, तभी एक नये विचार का जन्म हुआ; यानी विपरीत क्रम में एक खोयी हुई दुनिया की इस धारणा का, जैसा कि मैं पहले इशारा कर चुका हूँ, कि ऐसा अन्धकार-पूर्ण नगर आश्रय-स्थल के रूप में विद्यमान है, जिसमें वर्तमान, भूतकाल के साथ घुल-मिल कर जीवित अवस्था में रह रहा था। निस्सन्देह, यह, अथाह गहराइयों की दुनिया थी, एक ऐसा स्थान था जो आरम्भ-काल से प्रकाशहीन रहा है, और जिसके विस्तार को पानी के ऊपर बसा हुआ कोई महाद्वीप कभी पाट नहीं सकता है।

जीवन की सभी प्रकार की दुनियाओं में से केवलमात्र समुद्र की अतल गहराइयाँ ही ऐसी हैं जो कभी बदलती नहीं। पृथ्वी पर एकमात्र यही एक ऐसी जगह है जहाँ की हालत अभी भी वही है जो एकदम शुरू में थी, जहाँ पानी के पाँच मील भारी दबाव में कोई फर्क नहीं आया है, जहाँ कभी सूरज नहीं चमका, जहाँ ध्रुवों पर भी उतनी ही ठण्ड है जितनी कि भूमध्य रेखा पर, जहाँ ऋतु-परिवर्तन नहीं होते, और जहाँ समुद्र-तल पर स्थित उस गाढ़े द्रव पंक को आन्दोलित करने के लिए न तो कोई हवा चलती है न कोई लहर उठती है, जिसके ऊपर पारदर्शी स्पंज अपने लास्यमय सुन्दर डंठलों पर उगते हैं और अतल गहराई के समुद्री स्क्विर्ट (Squirt एक निचले वर्ग, Urochorda वर्ग का प्राणी होता है) धागे पर बँधे छोटे-छोटे गुब्बारों की तरह कीचड़ के ऊपर उतराते रहते हैं। इस ग्रह की यही एक ऐसी दुनिया है जिसमें, कल्पना के विशेष प्रयत्न से ही प्रवेश किया जा सकता है। शायद इससे बड़ा केवल एक कल्पनापूर्ण प्रयत्न था—अपनी सफलताओं के मद में चूर, समुद्र-तल पर जीवन का निर्माण होते देखने के लिए, अतल गहराई के पंक में जीवन और मृत्यु के संक्रमण पर दृष्टि डालने के लिए, उन्नीसवीं सदी के प्राणिविज्ञान का प्रयत्न।

कहानी, पिछली शताब्दी के सातवें दशक से उस समय शुरू होती है जब कि अन्ध महासागर में पहला समुद्री-तार बिछाया जा रहा था। विज्ञान के नाम पर की गई सबसे विचित्र और बड़ी भयानक गलतियों में से एक का इस कहानी से सम्बन्ध है। किसी एक आदमी को इस गलती के लिए जिम्मेदार ठहराना व्यर्थ है क्योंकि इसमें उस समय के बहुत से बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने भाग लिया था। यह कार्य विद्वद्वर्ग द्वारा अपनायी हुई आत्मप्रवंचना का सबसे

विचित्र मामला था और है। यह भौतिकवाद पर आवश्यकता से अधिक विश्वास रखने का फल था, कोरे अभिमान के कारण इस बात को, मानकर चलना था कि जीवन के रहस्य प्रकट होने ही वाले हैं।

जर्मनी में हीकेल (Haeckel) और इंग्लैण्ड में हक्सले, यह दर्शाने की तैयारी कर रहे थे कि जब हम नाभिकीय (Nucleated) एक कोश वाले जीव से निम्न वर्ग की ओर जाते हैं तो हम, अतल गहराइयों में पाये जाने वाले अवपंक (Slime) के ऐसे साधारण मथन पर पहुँचते हैं, जिसमें से कोई ऐसी वस्तु रिस-रिस कर निकलती है, जो न तो जड़ है न जीवन और जिसका, जीव-कोशीय व्यक्तित्व के बिना ही पोषण होता रहता है।

समुद्री खुदाइयों के दौरान, इस मुलायम-सरेसी पदार्थ को निकाला गया। हक्सले ने इसका परीक्षण, और इसके बारे में अपने निर्णय की घोषणा करने के बाद, अपने महान् जर्मन साथी हीकेल के सम्मान में इसका नाम 'बैथिबियस-हीकेलाई' रक्खा। १८७० में, रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी में हक्सले ने बड़े विश्वास के साथ कहा कि बैथिबियस, समुद्र के थाले में हजारों वर्गमील तक फैली एक जीवित, जमा मैल-सी वस्तु या परत है। इतना ही नहीं, हक्सले ने अपनी बात का इस हद तक विस्तार किया कि पृथ्वी की सारी सतह पर चारों ओर लिपटी हुई, जीवित पदार्थ की एक पट्टी की तरह शायद बैथीबियस की परत जमी हुई है।

सर चार्ल्स टामसन का भी यही विचार था। इस बारे में उन्होंने टिप्पणी की है कि इस 'जीव में अंगों का अन्तर नहीं दिखाई देता', और ऐसा लगता है कि यह "एक प्रोटीन यौगिक की आकारहीन चादर है जिसमें कुछ अंश तक उत्तेजनशीलता विद्यमान है और खाद्य-वस्तु को आत्मसात् कर लेने की सामर्थ्य है. . .एक फैला-फैला रूपहीन प्रोटोप्लाज्म है।" हीकेल का इन आकारहीन मोनेरा (Monera) के बारे में विचार था कि ये जड़ पदार्थ से उत्पन्न होते हैं और इसमें जीवन के संचार का रहस्य भौतिक और रासायनिक कारणों में पाया जा सकता है। अपने तीव्र रूप में यह वही उबलता, उफनता व्यक्तित्वहीन पंक, उर्सक्लीम था जिसमें तितली और गुलाब बनने की सम्भावनाएँ निहित थीं। मानव मिट्टी था और मिट्टी मानव थी। यन्त्रवादी दर्शन, उन दिनों सबके विचारों पर हावी था।

इस सुन्दर सिद्धान्त के दुर्भाग्य से एक लेखक ने, बड़े स्पृहालु भाव से इसे इस रूप में याद किया "इतनी अधिक व्याख्या कर देता है," इसका बैथिबियस एक ऐसी वस्तु साबित हुआ जिसे सूक्ष्मदर्शी यन्त्र का कुशल प्रयोग करने वाले "निर्मित तथ्य' (Artifact) कहते हैं, अर्थात् जिसका कोई अस्तित्व नहीं होता।

चैलेंजर-अभियान के एक हृदयहीन सदस्य श्री बुकानन (Buchanan) ने, बैथिबियस की प्रकृति का अध्ययन करने के बाद कहा कि उस वर्णनातीत जीव बैथिबियस के सभी गुण, समुद्री जल में तेज अल्कोहल मिला कर मैं पैदा कर सकता हूँ। इस प्रकार बने हुए घोल को पीने की आवश्यकता नहीं। इसके एक नमूने को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के नीचे देखने पर दिखाई पड़ा कि चूने का सल्फेट एक सरेसी द्रव के रूप में उससे अलग होकर तलछट की तरह जमा हो गया है जो कणों के गिर्द लिपट कर ऐसा दिखाई दे रहा है जैसे कि उन्हें अपने भीतर ले रहा हो। इस प्रकार वह घोल ऊपर से प्रोटोप्लाज्म का रूप धारण करता प्रतीत होता है।

श्री हक्सले का मूल नमूना भी ठीक इसी प्रकार जाँचा गया था। यद्यपि हक्सले ने इस घटना को अच्छे रूप में ग्रहण किया तो भी यह घटना भौतिकवादियों पर गहरा आघात थी। रूप-काया-हीन प्रोटोप्लाज्म जैसा 'उर्सक्लीम' वैज्ञानिकों का ऐसा मनोजात स्वप्न था जिसमे वर्तमान जीवन-प्रणाली के आधार पर जीवन के विकास की वंशावली तैयार करने का प्रयत्न किया गया था। उन्नीसवीं सदी के जीव-वैज्ञानिक होने के कारण, दुर्भाग्यवश, वे अति-सूक्ष्म वनस्पति-जीवन को, जीवित पदार्थों के पोषण में उसकी मूल स्थिति को और इस तथ्य को भूल गये कि वनस्पति-जीवन को अपने रहस्यमय हरे रंग के चमत्कारों के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है।

यह जानना बाकी था कि समुद्र की गहराइयों में पानी में जो कुछ भी घूमता-फिरता हो या इसके गहन अन्धकार में जो कुछ भी चुपके से फिसलना-सरकता हो, ये गहराइयाँ जीवन का जन्म-स्थान नहीं थीं। गहरे नीचे उस काजल से काले मैदान में अगर, बीते युगों का विचित्र जीवन सचमुच ही चलता-फिरता है तो, जैसा कि कुछ समुद्र-वैज्ञानिकों ने सोचा था, वह भूगर्भीय परतो की खूबसूरती के साथ स्तरों में अंटा-सजा नहीं है। अपने क्षीण से शरीरों समेत तैरते हुए सिर, गहराइयों में रहने वाली नीली चमकीली स्याही का बादल छोड़ उसकी आड़ में अदृश्य हो जाने वाली स्क्विड (Squid) मछली, ये सब जीवन के विचित्रतम गुणों के अंग थे—यानी जो है उसके प्रति जीवन का शाश्वत असन्तोष, नये वातावरणों में आगे बढ़ने का निरन्तर स्वभाव, और धीरे-धीरे अपने-आपको आश्चर्यजनक परिस्थितियों के अनुकूल ढालना।

बहुत पहले जब मैं एक छोटा बच्चा था तब मुझे एक बार एक पुराने कुएँ का ढक्कन उठाने की याद आती है। उस समय मैं अकेला था और मेरी खोपड़ी मे एक हल्की-सी सुरसरी के साथ अब भी वह दृश्य आँखों के समाने घूम जाता है जो कि मैंने किनारे पर खड़े होकर भीतर झाँकने पर अँधेरे को चीरती हुई

कई फुट नीचे तक जाती सूर्य-किरण के प्रकाश में देखा था। यह सूर्य-किरण कुएँ के पानी से लगभग बीस फुट ऊपर खाली जगह में, बाहर निकले और जग-लगे एक पाइप को छू भर रही थी। वहीं पर उस भूमिगत कुएँ में, जिसके रहस्य ने मुझे इस साहसिक कार्य के लिए आकर्षित किया था, मैंने एक बालों और कई पैरों वाली मकड़ी-सरीखी चीज़ को असंदिग्ध रूप से बिना किसी जल्दी के चुपचाप अँधेरे की ओर जाते हुए देखा था। उसे देखते ही मैंने एक सिहरन के साथ लकड़ी के सड़े तख्ते के ढक्कन को बन्द कर दिया। पर उस कुएँ का वह अपरिचित जीव आज भी मेरी स्मृति में ज्यों-का-त्यों मौजूद है।

मेरा खयाल है कि शायद मैंने पहली बार जीवन की आश्चर्यजनक भयोत्पादक विभिन्नता को देखा-समझा। नीचे उस कुएँ में कोई ऐसी चीज थी जो सूर्य को पसन्द नहीं करती थी, कोई ऐसी चीज़ जो पूर्ण अन्धकार में, गन्दे पानी के ऊपर बेहद संकरे रास्तों पर चल सकती थी, कोई ऐसी चीज जो अपनी मर्जी से ऊपर उजाले को छोड़, नीचे अन्धकार में आई थी। यही वह बात थी जिससे जीवों ने समुद्र की अतल गहराइयों में प्रवेश किया, अर्थात् वे ऊपर के क्षेत्र को छोड़ कर वहाँ गये। जीवन समुद्र-तल पर पैदा नहीं हुआ, गहरे जल के कीचड़ मे इसका संपूर्ण रूप से निर्माण नहीं हुआ। इसके बजाय अपनी बेरौनक सूँडों के साथ या अन्वेषन के नाजुक तिनके-जैसी स्पर्शेन्द्रियों से अपनी राह टटोलता हुआ अतल गहराइयों के अँधेरों में पहुँचा।

ब्रिटिश एडमिरेल्टी के तत्त्वावधान में 'चैलेन्जर' की चार साल की समुद्री यात्रा, समुद्री गहराइयों की छानबीन के लिए मनुष्य द्वारा किये गये प्रयत्नो में सबसे बड़ा अभियान था। यह यात्रा सन् १८७२ में आरम्भ हुई थी। जहाज में कई तैरती हुई प्रयोगशालाएँ थीं और वैज्ञानिक-कर्मचारियो का एक दल तैनात था। इस जहाज ने उनहत्तर हजार समुद्री मीलों की दूरी तय की और हजारों स्थानों पर गहराई की नाप-जोख तथा पड़ताल की। इसके वैज्ञानिक दल द्वारा की गई पड़ताल तथा अध्ययन के परिणामों से पचास बड़े-बड़े ग्रंथ भरे पड़े हैं।

जिस समय चैलेन्जर बन्दरगाह से रवाना हुआ उस समय तक समुद्र विज्ञान का आधार मुख्यत: अनुमान ही थे। उसके प्राणिविज्ञान-निदेशक सर चार्ल्स वाइवील टामसन थे। ये वही वैज्ञानिक हैं जिन्होंने उत्तरी अन्धमहासागर से वह लाल सी-अर्चिन खोद निकाला था। अपने बहुत से साथियों की तरह ही उनका विचार था कि युगों से परिवर्तन-रहित समुद्र के गहरे स्थलों से जीवित फासिलों का, जीवन-विकासक्रम की अज्ञात कड़ियों का पता चल जायेगा। अपनी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर से टामस हक्सले ने अपने सहज उत्साह से घोषणा की—

"यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि······जो वस्तुएँ ऊपर लाई जायेंगी······वे ऐसे प्राचीन जीव होंगे, जो समुद्र की शान्त और करीब-करीब न वदलने वाली गहराइयों में, विनाश के उन कारणों से बच गये जो उथले जल में वर्त्तमान थे और ये सब प्राचीन जीव, मुख्यतया एक बीते हुए युग के प्रतिनिधि होंगे।"

प्रसिद्ध स्विस प्रकृतिवादी लुई अगासिज भी इस विचार के बड़े उत्साही समर्थक थे। उन्होंने तर्क पेश किया कि गहरे समुद्रों में "प्राचीन भूविज्ञानीय युगों के प्रतिनिधि जीवों को पाने की आशा की जानी चाहिए।" अगासिज इसमें कुछ और आगे बढ़े और उन्होंने विचार प्रकट किया कि जिन अवस्थाओं में पहले-पहल जीवन पैदा हुआ था, उससे बहुत हद तक मिलती-जुलती अवस्थाएँ, समुद्र की गहराई में हैं। उन्होंने कहा ये समुद्र की गहराइयाँ ही हैं जो जीव-जन्तुओं पर उतना दबाव डाल सकती हैं, जितना कि (अगासिज के अनुसार) पृथ्वी की किशोरावस्था के भारी वातावरण में था।

ये थे सन् १८७२ में, विज्ञान के उस समय के सनसनी-भरे स्वप्न, जिस समय कि धुएँ के गुबार छोड़ता हुआ 'चैलेन्जर' बन्दरगाह से रवाना हो रहा था। उनहत्तर हजार मील की यात्रा और चार वर्ष बाद उसके थके-हारे वैज्ञानिक घर लौटे। वे सभी समुद्रों में बेतहाशा भटके फिरे थे। उन्होंने भारी और भद्दे उपकरणों से स्वयं जीव-सृष्टि के गर्भ को कुरेदा था। उन्होंने दुर्लभ जीवों को देखा-भाला था, ऐसी वस्तुएँ देखी-भालीं जो साधारण लोगों को प्राप्त नहीं हो सकती थीं और सबसे बड़ी बात जो उन्होंने की, वह थी एक सही समुद्री-विज्ञान का शिलान्यास। इतना सब होने पर भी उनकी निगाहें सूनी ही रहीं।

पृथ्वी के चारों ओर लिपटे जीवित पंक की वह विशाल चादर गायब हो गई थी—जीवविकास-क्रम का वह आधार, जिसमें जर्मनी के विद्वानों को 'प्रत्येक संभव कल्पनीय दिशा में सुधार की अनन्त सम्भावनाएँ' दिखाई देती थी। कोरल-विशेषज्ञ मोज़ले (Moseley) ने थके-हारे मन से स्वीकार किया कि "जब दुनिया के हर हिस्से में, समुद्र तल से वही और फिर वही अजीबोगरीब जन्तु बाहर लाये जाते रहे तो हमारा जोश बहुत-कुछ ठंडा पड़ता गया।"

शुरू-शुरू में जहाज के केबिनों में काम करने वाले छोकरे भी यह देखने के लिए इकट्ठे हो जाते थे कि चार मील गहराई से क्या चीज निकाली गई है। पर जब धीरे-धीरे उनकी नवीनता कम होती गई तो दर्शकों की संख्या भी कम होने लगी। यहाँ तक कुछ मौकों पर वैज्ञानिक कर्मचारी भी हमेशा

उपस्थित नहीं रहते थे, खास तौर पर तब जबकि समुद्र से खोदी हुई वस्तुएँ शाम के खाने के समय ऊपर पहुँचती थीं।

आरम्भ की बड़ी-बड़ी आशाएँ निराशा में बदलती जा रही थी लेकिन अपने प्रतिपादित सिद्धान्तों को गलत साबित होते देखते हुए भी सर चार्ल्स टामसन में अद्भुत धैर्य और उत्साह बना हुआ था। मोज़ले ने, उनके इस धैर्य का अविस्मरणीय चित्र खींचा है। उन्होंने लिखा, "प्रत्येक कटल-फिश (मछली) को जो हमारे गहरे समुद्री-जाल से निकाली गई, अन्तिम दम तक यह देखने के लिए निचोड़ा गया कि कहीं उसकी पीठ में बेलेम्नाइट्स की हड्डी तो नहीं है और बेहद उत्सुकता से ट्राइलोबाइटों की खोज की गई।" इसमें से किसी भी घटना के फलस्वरूप, चैलेन्जर के डेक पर पुराजीवक काल के जन्तु जीवित हरकत करते हुए देखे जा सकते थे। परन्तु सर चार्ल्स को घोर निराशा में धकेलते हुए ऐसा कोई जीव नहीं दिखाई पड़ा। यह सच है कि यदा-कदा कुछ ऐसे जीव अवश्य निकले, जिनके बारे में विश्वास किया जाता था कि वे नष्ट हो गये हैं और केवल फासिल-रूप में ही पाये जाते हैं, लेकिन यह ऐसे जीवों की खोज थी जिन्हें किसी भी विशाल और अनजाने क्षेत्र की पहली छानबीन में पाने की आशा की जा सकती है, चाहे ऐसा क्षेत्र समुद्र हो या धरती।

सुदूर अज्ञात गहराइयों से एकदम आरम्भिक युग के संरक्षित बचे-खुचे जीव नहीं निकल रहे थे बल्कि बाद की विचित्र किस्में और पहले से अधिक विकसित समुद्री जन्तु निकल रहे थे, जो स्पष्ट रूप से उन जीवों के सम्बन्धी और वंश-क्रम के थे, जो उथले-सागर-जल की, ऊपरी सतह में पाये जाते हैं। अतल गहराइयों में जो प्राचीन जीव अभी भी जीवित हैं वे, जीवन द्वारा पुरातन काल में समुद्र की ऊपरी सतह और महाद्वीपों के तटवर्ती उथले जल से जो प्रवास शुरू हुआ था और परिस्थितियों के अनुकूल ढालने का जो क्रम शुरू हुआ था, उनके प्रतीक हैं। इस रूप में उस अँधियारे-कालहीन नगर का सचमुच अस्तित्व है। क्योंकि उन गहराइयों में कई युग एक-दूसरे से गुँथे मिले हैं और पुरातन जगत् के कुछ थोड़े जीव-तत्त्वों ने अधिक विकसित और नई किस्मों के साथ प्रतियोगिता में मात खाने के कारण धीरे-धीरे गहराइयों के कठिन शीत की ओर सरकना पसन्द किया था। यहाँ के परिवर्त्तनहीन कीचड़ और आरामदेह अँधेरे में वे जीवित बच गये। कालान्तर में अपने अजीब दीपकों या प्रकाश-विस्तारक आँखों को लेकर, अन्य जीव भी उन्हीं के पीछे, उस विशाल तह-खाने में राह टटोलते हुए आ पहुँचे। यह, वातावरण के अनुकूल, अंगों का ऐसा विकास था जो स्विवड-मछली और अधिक विकसित रीढ़दार जानवरों में सम्भव है।

यहाँ तक कि स्तनपायी जीवों में से भी, ह्वेल मछली की एक जाति स्पर्म ह्वेल उस समुद्री दानव क्रैकन की दुनिया के भयावह दबाव की ओर, गहराई को आँकती जा पहुँची। इस प्रकार ऊपर की सतह से नीचे आने वाले जीवों मे स्पर्म-ह्वेल अन्तिम है, वैसे यह उसी गहराई तक कुछ ही क्षणों का दबाव सहन कर सकती है जो वस्तुतः अतल गहराई का प्रारम्भ मात्र है। अतल गहराइयाँ यदि जीवों की शरण-स्थली हैं तो साथ ही यह एक अकालपीड़ित दुनिया भी है। यहाँ वनस्पति जीवन नहीं पाया जाता। जो जीव यहाँ के वासी हैं वे एक-दूसरे का शिकार कर या उन मुर्दा चीजों पर निर्भर करते हैं जो समुद्र की ऊपरी सतह से नीचे बरसती रहती हैं। यही कारण है कि यहाँ रहने वाले जीवों के शरीर बड़ी अजीब तरह से छोटे और जबड़े बहुत बड़े होते है। हम जानते हैं कि अभाव-पीड़ित स्थान होने के करण ही, अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ जीवन ने देर से प्रवेश किया।

जीव-रसायन-शास्त्रियों के अनुसार, जीवकोशों के जीवित रहने की परिस्थितियाँ बहुत सीमित हैं और जब से जीवन का जन्म हुआ है तब से अब तक इसमें कोई उल्लेखनीय परिवर्त्तन नहीं हुआ है। सरसरी निगाह से देखने पर यह बात बेहूदी लगती है। जीवन पानी से सरक कर बाहर आया है, मैदानों मे रेंगता है, वायुमण्डल को चीर आकाश में उड़ता है, यहाँ तक कि दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश में भी जीवन अज्ञात नहीं है। असंदिग्धरूप से ये अगणित विभिन्नताएँ 'सीमित' शब्द के बिलकुल विपरीत हैं।

इस सबका उत्तर इस छोटे से पद में है, जिसमें यह बात इस तरह कही गई 'जीवकोशों के जीवन की परिस्थितियाँ', जिस आन्तरिक पोषक द्रवत्व में जीव-कोश सहनशक्ति के एक सीमित क्षेत्र में जीवित रहते और बढ़ते हैं, उसे सुरक्षित रखने के उपायों के संपादन के कारण ही जीवन के रूपों में इतना विशाल अन्तर आ गया है। यही कारण है कि स्तनपायी जीवों के रक्त की बनावट को देखते हुए किसी ने मनुष्य का वर्णन 'चलते-फिरते समुद्री जल के थैले' कह कर किया है, और इसी कारण से प्रसिद्ध फ्रांसीसी शरीर-क्रिया-विज्ञान-वेत्ता बरनार्ड ने कहा है कि "आन्तरिक वातावरण का स्थिर होना ही स्वतन्त्र-जीवन के अस्तित्व की शर्त है।"

शुरू-शुरू के समुद्रों में जीव-कोशों के समुदाय एक पोषक घोल में तिरते थे। बिना किसी विशेष श्रम के ही उन्हें लवण, धूप और नमी उपलब्ध होती रहती थी। जीवन का जल से बाहर आना ही वह कारण है जिससे इसकी रूपरेखा में परिवर्तन हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवों को अपने साथ ही समुद्र-जल को भी किनारे पर लाना पड़ा ताकि सभी को अपने में आश्रय

दनेवाले जिस समुद्र से वे बाहर आये हैं, उसी का एक छोटा रूप अपने शरीर मे सृजन कर सकें। जल से बाहर आने के इस सिलसिले को सम्पूर्ण जड़ जगत् की बिना चिन्ता किये, पत्थरों के बीच अन्धों की तरह लगातार राह टटोलने की कठिन बाधाओं को, केवल जीवन ही सहन कर सकता है और अद्भुत ढग से युग-युगान्तरों तक आगे चालू रख सकता है।

मनुष्यों ने अपने स्थानों पर काम किया है। उन्होंने समुद्र में जन्मे इस प्रोटोप्लाज़्म को शैवाल या काई (Lichen) के रूप में ऊपर सरकते देखा है, हिमाच्छादित पर्वतमालाओं की चीत्कार करती हवाओं में देखा है, इन्होंने इसे रेगिस्तानों की छिपकली के कोमल पैरों में देखा है जो बालू पर दौड़ने के लिए विशेष प्रकार से बने होते हैं। यह किसी अज्ञात स्थान से, बहुत सम्भवत. महाद्वीपीय जलमग्न तटों के उथले जल के किनारों से झीलों और घास के मैदानों में पहुँचा, चुपके-चुपके रेगिस्तानों से जा टकराया, यहाँ तक कि इसने उबलते सोतो की गर्मी को सहना, या फिर एम्परर पेंगुइन की तरह दक्षिणी ध्रुव के बर्फीले तूफानों में भी अंडे सेना सीखा। इसी तरह इसने अतल गहराई की ओर नीचे को भी अपनी राह खोज निकाली। इसने समुद्र-तल के भारी दबाव की समस्या को उसी तरह हल कर लिया जिस तरह कि ऊँचे पर्वतों की विरल वायु में जिन्दा रहना सीखा। इस तरह के कठिन वातावरण में जीवन कुछ कमजोर पड़ जाता है, इसकी सहायता करने वाले नवीन अङ्गों का विकास अधिक मुश्किल हो जाता है। इस तरह के स्थानों पर जीवन का देर से ही प्रवेश सम्भव है, क्योंकि जीवन ने ग्रह के ऐसे अरक्षित बंजर भागों में और स्थानो की अपेक्षा देर से प्रयोग किये हैं।

जीवन का जल से निकल बाहर जाने का सिलसिला एक खरब वर्ष पहले शुरू हुआ था और अभी भी जारी है। जीव-कोश, जो अपनी सहिष्णुता के सीमित दायरे, गर्मी, तुषार और दबाव की आश्चर्यजनक सीमाओं से होकर धीरे-धीरे सावधानी से विस्तार कर रहे हैं, उनमें सन्तुष्ट होकर शान्त हो बैठने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। सन्तुष्टि एक ऐसा शब्द है जिसे जीवन नही जानता। यह एक ऐसा शब्द भी है जिसे मनुष्य भी नहीं जानता।

सन् १९४९ में ह्वाइट-सैण्ड्स के परीक्षण-केन्द्र से छोड़ा हुआ एक वाक कारपोरल राकेट (Wac Corporal Rocket) २५० मील की ऊँचाई तक पहुँचा और बाह्य अन्तरिक्ष के किनारे पहुँच कर रुका, फिर नीचे गिर गया। न जाने क्यों, मुझे यह सोचना अच्छा लगता है कि वे राकेट वर्ष-प्रतिवर्ष वायु के अगाध महासागर से होकर एक ऐसे निस्सीम जगत् की ओर गड़गडाते हुए जा रहे हैं, जहाँ पहुँच कर कोई फिर शीघ्र ही नही लौटेगा। कभी-कभी संध्या-

समय तारों-भरे आकाश के नीचे घूमते हुए मैं एरेनियस द्वारा प्रतिपादित उस भूले-बिसरे सिद्धान्त के बारे में सोचता हूँ कि पृथ्वी पर जीवन के बीजाणु बाह्य अन्तरिक्ष से आये।

शायद यही इसका स्पष्टीकरण है, मैं असंभाव्य की संभावना के साथ सोचता हूँ, जीवन दायरे तोड़ रहा है। एक खरब वर्ष से अनजानी राह टटोल रहा है। जीवन, वापस घर जाने को व्याकुल है।

कम-से-कम उन्नीसवीं सदी के यन्त्रवादी हमारे उद्गम को समुद्री गहराइयों में नहीं पा सके, रसायनशास्त्री के उबलते घोलों के हर बुलबुले के साथ जीवन का रहस्य उतना ही अगोचर रहा जितना कि पहले था। यह पता है कि जीवन किन तत्त्वों से बना है, जिन्हें किसी भी दवा बेचने वाले की दुकान में देखा जा सकता है। आप स्वयं उन्हें खरीद कर सबको मिला कर, इस आशा के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं कि इस तरह जो घोल बना है वह रेंगता हुआ चल पड़ेगा, पर ऐसा नहीं होगा। प्रवहमान प्रोटोप्लाज़्म का सुन्दर स्पन्दन, आखिर रसायन का वह अज्ञात गठन आरम्भ नहीं होगा, जिससे जीवन का निर्माण होता है। आपने कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिला तो दिये—लेकिन वे पहले की ही तरह वैसे मुर्दा ही पड़े रहेंगे।

समुद्र-जल और कार्बन का आकार चक्कर काट रहा है, साथ-ही-साथ गाँव की सड़क पर घोर उलझन में पड़ा एक प्रोफेसर भी, मैं ऊपर की ओर देखता हूँ, मेरी निगाह चन्द्रमा और शुक्र ग्रह से होते हुए आकाश-गंगा से परे, बाहर को, दूर उस नीली-नीली श्वेत चमक की ओर जाती है। और जब इस तरह देखते हुए मैं रोमांचित होता हूँ तो मुझे लगता है कि मेरे अस्तित्व की रग-रग से यह आवाज आती है—क्या हम किसी और स्थान से आये हैं? क्या हम अपने इन उपकरणों से घर लौट सकेंगे? आरम्भ जैसे भी हो और चाहे जिन यान्त्रिक विस्तारों से हो, जीवन अनन्त आकाश के खुले द्वार में प्रवेश करने ही वाला है। क्या माउंट पैलोमर की २०० इंची दूरबीन से इसकी संभावनाओं का चुप-चुप पता नहीं लगाया जा चुका है?

इस आँख को बनाने में एक खरब वर्ष का समय लगा है, इसे लवण, पानी और सूर्य के बाष्पों ने बनाया है, सागर-तट पर लहरों द्वारा लाई हुई मिट्टी पर जो वस्तुएँ वेदना से बिलबिलाती रेंगी थीं, उन्होंने इसका निर्माण किया है। इस आँख की मदद से मस्तिष्क, प्रकाश-वर्ष से प्रकाश-वर्ष दूर बाह्य अतरिक्ष की गहराइयों की भी गहराइयों में उन श्वेत लघु सूर्यों के पदार्थ की स्थिति का, निरपेक्ष अवलोकन कर सकता है जो आधारहीन अनन्त में लटके हुए हैं।

लेकिन इस पर भी जब कभी मैं एक मेंढक को पानी के नीचे से किनारे की धरती के दृश्य को सतर्कता से, स्नेहपूर्वक निहारते देखता हूँ तो मुझे हमेशा अकारण ही उन घूमती हुई यान्त्रिक आँखों का ख़याल आता है जिन्हें मानव रात भर हज़ारों वेधशालाओं में काम में लाता है। किसी दिन, एक एकड़ व्यास वाले लैन्स के दूरबीन से हम ऐसी वस्तु देखने जा रहे हैं जो हमें पसन्द नहीं आयेगी—बाहर आकाशरूपी विशाल जलाशय के पार कोई धुँधली-विशाल आकृति।

जब कभी किसी मेंढक से मेरी निगाह मिलती है तो मुझे इसी बात का एहसास होता है, लेकिन मैं इसमें खिन्नता अनुभव नहीं करता। मैं, चुपचाप, स्थिर खड़ा रहता हूँ और इस बात की भरसक कोशिश करता हूँ कि कहीं मेरा हाथ ऊपर न उठे या कहीं मेरा शरीर न हिले, अन्यथा मेंढक बेचारा डर जायेगा। इस प्रकार चुपचाप खड़े रहने पर अन्ततः मुझे भान होता है कि यह जीवन की कल्पना-शक्ति का सबसे बड़ा विस्तार है—स्वयं को दूसरे जीवों में देख सकने की सामर्थ्य। यह मानवता की एकान्त और अद्भुत शक्ति है। अनन्त आकाश में प्रवेश करने के किसी भी साहसिक कार्य से कहीं महान् है, जीवन की बहिर्गति का सर्वोच्च सार है।

४. थूथन

●

मैं लम्बे अरसे से अष्टभुज (आक्टोपस) का प्रशंसक हूँ। सेफालोपोडा वर्ग के जीव बहुत प्राचीन हैं और वे अपने कई रूपों में मायावी आकार-परिवर्तन से बच गये। सीप-घोंघे आदि के वर्ग (मोलस्क) के जीवों में आक्टोपस सबसे बुद्धिमान् जीव होते हैं। मैंने सदा यह अनुभव किया है कि यह हमारे लिए भी अच्छा ही हुआ जो ये जल का जीवन त्याग कर बाहर सूखी जमीन पर नहीं आये। लेकिन दूसरी कई और वस्तुएँ बाहर आई हैं।

भयभीत होने की कोई बात नही है। यह सच है कि कुछ जीव विचित्र जरूर हैं लेकिन मेरे विचार से परिस्थिति का कुछ और रूप होने की अपेक्षा यह अधिक उत्साहवर्धक स्थिति है। यह देखकर विश्वास की भावना पैदा होती है कि प्रकृति अभी भी विभिन्न प्रयोग कर रही है, अभी भी गतिशील है, अभी वह पूर्ण नहीं हुई, और न इस कारण सन्तुष्ट हुई कि डेवोनियन-काल की एक मछली ने विकसित होते-होते एक ऐसे दोपाये का रूप धारण कर लिया है जो सिर पर टोपी पहने घूमता फिरता है। समुद्र के विशाल कुण्ड में अभी और भी कई वस्तुओं का सृजन हो रहा है और वे पनप रही हैं। उन्हें जानने से लाभ होगा। साथ ही यह जानने से लाभ होगा कि जितना कुछ भूतकाल में था उतना ही भविष्य में भी है। केवल एक चीज ऐसी है जिससे कोई फायदा नहीं होता, वह है, इस सम्पूर्ण क्रम में मनुष्य के योगदान के प्रति आश्वस्त रहना।

जल से अभी भी कुछ जीव किनारे पर आ रहे हैं। यह सोचने की गलती कभी न करना कि अब जीवन ने अपने को अनन्त काल के लिए ढाल लिया

है। यह निश्चयात्मकता आपके सिर चढ़ जाती है। मेरा मतलब है मानव की अपनी निश्चयात्मकता, और तब आप उन सब वस्तुओं से वंचित रह जाते है जो समुद्र-तट के ऐसे छोटे हिस्सों पर आती हैं जहाँ ज्वार-भाटे आते हैं। उनका क्या मतलब है ? और क्यों है ? जैसा मेरी पत्नी कहती है उन पर निगाह रखनी होगी।

परन्तु कठिनाई यह है कि दृष्टि किस पर रखनी है इसका हमें पता नहीं है। मेरे एक मित्र हैं, जो गवेषक क्लब के सदस्य हैं। अपनी यात्राओं के बीच म जब उन्हें मौका मिलता है तो वे अक्सर मुझे यह बताने के लिए आ जाते हैं कि उन्होंने युगांडा में कितने बड़े जबड़े वाला मगरमच्छ देखा या फिर अर्नहेम-लैंड के किस तट पर उन्हें किस दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा।

"वे पेड़ों से आकर गिरीं", उन्होंने कहा, "ऐसे कि मानो ऊपर से बरसी हों और सीधे नाव पर आकर गिरीं।"

"अच्छा !" मैंने ऐसे कहा जैसे हाँ था ना कुछ न हो।

"ऐसा हुआ" उन्होंने मेरा विरोध-सा करते हुए कहा "और उन्हें पकड़ना बड़ा मुश्किल था।"

"सच······।" मैंने कहा।

"हम, उत्तरी आस्ट्रेलिया में एक संकरी समुद्री खाड़ी से होकर एक डोंगी मे बैठे हुए जा रहे थे, और बड़ी तेजी से चल रहे थे कि धम्म से हमारी नाव एक मेनग्रूव की झाड़ी से जा टकराई, और वे सब-की-सब भरभरा कर नीचे गिरीं।"

"मैं पूछता हूँ, कि वे झुण्ड बनाकर बैठीं वहाँ क्या कर रही थीं, वह मछलियों के बैठने की जगह नहीं है और इसके अलावा उन्हें बड़ी कुशलता से आड़े-तिरछे हो, भाग निकलना भी आता था। भई, हमें यह सब अच्छा नहीं लगा। किसी-न-किसी को उन पर नजर रखनी पड़ेगी।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"मैं क्या जानूँ ?" अपने चौकोर हाथ को अपने बालों पर फेरते और माथे पर बल डालते हुए उन्होंने अधीरता से कहा, "मेरा तो सिर्फ यह मतलब है कि उन्हें देख कर ऐसा लगता है, बस। एक मछली की जगह, पानी में है, उसे पानी में ही रहना चाहिए जैसे हम जमीन पर अपने घरों में रहते हैं। लोगों को पता होना चाहिए कि उनकी जगह कहाँ है और उन्हें वहीं होना चाहिए, पर उन मछलियों को किनारे से भाग निकलने का तरीका मालूम है। ऐसा प्रतीत होता है, उनके मन में कुछ बात थी और वे अपने स्वभाव और प्रवृत्ति के अनुकूल व्यवहार नहीं कर रही थीं। आप समझे, मैं क्या कह रहा हूँ ?"

मैं समझा, आप क्या कहना चाह रहे हैं", मैंने गंभीर होकर कहा, "उन पर दृष्टि रखनी ही होगी। मेरी पत्नी भी, बहुत-सी बातों के बारे में ऐसी ही बातें करती हैं।"

"सच" उन्होंने चमक कर कहा, "यानी इस मामले में मैं अकेला नहीं हूँ, पता नहीं ऐसा क्यों होता है, लेकिन इन बातों को देखकर ऐसे ही विचार उठते हैं।"

मेरे मित्र नहीं जानते थे कि ऐसा क्यों है? लेकिन मैंने सोचा कि मैं जानता हूँ।

यह सिलसिला वहाँ शुरू हुआ, जहाँ ऐसी बातें सदा होती हैं, यानी अन-देखे दलदलों के मन्द बहाव में, राहु-ग्रस्त चन्द्रमा के अँधेरे में। हवा के लिए एक घुटन-भरी साँस से इसकी शुरुआत हुई।

पानी का वह कुण्ड सड़ती-गलती वस्तुओं से भरा भ्रष्ट स्थान था, बदबू से भरा हुआ, और उसमें थी ऑक्सीजन के घोर अभाव में पड़ी गलफड़ों द्वारा कठिनाई से साँस लेती हुई मछली। कुण्ड का पानी सूखता जाता था और समय-समय पर उस कुण्ड का दायरा और छोटा होता हुआ छोटी-छोटी बिन्डो और मीनिका मछलियाँ बाहर छोड़ता जाता था जो सूरज की रोशनी से बचने के लिए कीचड़ में घुसने की कोशिश करती थीं, लेकिन उस गाढ़े, गर्म कीचड़ में वे काल की ग्रास हो गई थीं। यह जगह निम्न वर्ग के जीवों की थी। इसी में मानव-मस्तिष्क का जन्म हुआ।

इस तरह के पानी से भरे तालाबों में अजीब किस्म के थूथन वाले जीव थे, विचित्र प्रकार के गलमुच्छों वाले जीव तालाब के तले की पंक की टोह लेते रहते थे, और वहाँ समय था—पूरे तीस करोड़ वर्ष का, लेकिन मैं—सोचता हूँ कि इन सबमें महत्त्वपूर्ण वह पंक था—जल के नीचे स्थित पंक से रिसने वाला द्रव। दिन के समय तालाब के बाहर की दुनिया का तापमान, भयानक रूप में बढ़ जाता, रात के समय सूरज तपते लाल गोले की तरह नीचे उतर जाता। धूल-भरी आँधियाँ लगातार, प्रचंड वेग से उस वीराने में होकर चलतीं, जिसमें बहुत पुराने समय के पेड़पौधे थे। पत्रहीन, अजीब, अकड़े-अकड़े-से वे पानी के निकट जैसे-तैसे जीवन धारण किये हुए थे। दूर-दूर तक घास-रहित मैदानों में हवा के अनवरत झोंके इस हद तक चलते कि उनकी रगड़ से लाल पत्थरों की चट्टानें शीशों की तरह चिकनी हो जातीं। मिट्टी की परतों को अपने स्थान पर रोके रखने के लिए कोई आड़ नहीं थी, कोई बाधा नहीं थी। आँधियाँ चीत्कार करती दौड़तीं, धूल के भयावह बादल मँडराते और रुक-रुक कर मूसलाधार वर्षा होती जिससे धूल-मिट्टी से भरी हुई धाराएँ वेग से समुद्र की ओर चल

निकलती । वह पागल कर देने वाली परस्पर-विरोधी शक्तियों का समय था, सम्भ्रमण-काल था ।

तालाब की चिकनी सतह पर, थोड़े-थोड़े समय पर एक थूथन ऊपर को आता, और अजीब गुर्राहट की आवाज से साँस द्वारा हवा खींच, कलाबाजी खाता हुआ वापस चला जाता । उस तालाब के चारों ओर विनाश का नृत्य चल रहा था, उसका जल गन्दा था और ऑक्सीजन समाप्तप्राय । पर वह जीव नहीं मरा । वह एक सहायक फेफड़े की मदद से सीधे वायुमण्डल से ऑक्सीजन खींच लेता था । वह जमीन पर चल भी सकता था । उस अद्भुत और जीवशून्य धरती पर उसी एक अकेले प्राणी में ऐसा कर सकने की सामर्थ्य थी । वह कभी-कभार विवश होकर चलता था और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि वह जीव एक मछली था ।

कुछ दिन बीतने पर वह तालाब कीचड़ का एक गड्ढा बन गया, लेकिन वह थूथन जिन्दा रहा । एक दिन एक काली अन्धेरी रात में ओस गिर रही थी और जलधारा के खाली थाले में ठण्डक भरी थी । उसके दूसरे दिन जब सूरज निकला तो वह कीचड़-भरा गड्ढा, सूखी पपड़ी की मिट्टी में बदल गया लेकिन वह थूथन वहाँ नहीं था, कहीं अन्यत्र चला गया था । सूखी जलधारा के निचली ओर—और भी तालाब थे । उसने कुछ घण्टों तक साँस ली और फिर अपने डैनों के ठूँठों पर डगमगाता हुआ आगे बढ़ चला ।

यदि किसी के लिए देखना सम्भव होता तो वह देखता कि यह कितना विलक्षण, अस्वाभाविक और कठिन कार्य था । यह एक ऐसी यात्रा थी जिसे दिन के उजाले में नहीं देखा जाना था, ऐसी यात्रा, जिसके लिए दलदल और छाया और रात भर गिरी ओस के स्पर्श की जरूरत थी । यह एक निषिद्ध-तत्त्व का अद्भुत प्रवेश था और इस बीच उस थूथन ने अपने चेहरे को सूर्य के प्रकाश से बचाये रखा । यद्यपि यह बिल्कुल ऐसा ही था, तो भी उस चेहरे का मजाक नहीं उड़ाना है । तीस करोड़ वर्ष बाद यह चेहरा हमारा अपना चेहरा होने वाला था ।

उस थूथन के दिमाग में कुछ उफन रहा था । अब वह केवल मछली-भर नहीं रह गया था । जल के नीचे स्थित पंकिल स्राव ने उसे प्रभावित कर दिया था । दलदलों और सागर-तट के ज्वार-भाटे वाले क्षेत्रों का जानकार प्राणि-वैज्ञानिक आपको बतायेगा कि यही वह क्षेत्र है जहाँ जीवन को असीम वेदना सहनी पड़ती है । यही वह जगह है जहाँ पानी का तोड़ा पड़ने और निराशा की स्थिति तक पहुँचने पर नये इलाकों में प्रवेश का आरम्भ होता है । यहीं पर परिस्थितियों के साथ विचित्र ढंग के समझौते किये जाते हैं और नई ज्ञानेन्द्रियों

का जन्म होता है। वह थूथन इसका अपवाद नहीं था। यद्यपि उसने साँस लेना और चलना, मुख्यतया जल में बने रहने की इच्छा से शुरू किया था, पर वह आ रहा था किनारे पर सूखी धरती की ओर।

वस्तुतः वह एक सफल मछली नहीं थी। उसमें इसके सिवा कोई खास बात नहीं थी कि वह किसी तरह ऑक्सीजन की बेहद कमी वाले, एक ऐसे वातावरण में जीवित रह पाई थी जो बदबूदार और आराम-चैन से कहीं दूर था। वस्तुतः ऐसा समय आ रहा था जबकि उसकी जाति का अन्तिम जीव अपने से अधिक तीव्रगामी और खूँखार मछलियों से परेशान होकर सुरक्षा की खोज में तटवर्ती सागर-जल को छोड़ कर गहराई की ओर सरकने वाले थे, उस अतल गहराई के अँधेरे की ओर, लेकिन यह थूथन (अगर उसे सही नाम से पुकारा जाय तो) मीठे पानी में रहने वाला क्रासोप्टेरिजियन (Crossopterygian) था, यद्यपि वह बेडौल और मंथर गति से चलने वाला था, लेकिन उसकी आँखों के पीछे कुछ हो गया था। पंक से रिसने वाले उस द्रव ने अपना काम कर दिया था।

यह सोचना बड़ा रोचक है कि यदि वह हरी-हरी दलदली कीच न होती जिससे कि थूथन निकला था तो हम लोग, जो इस थूथन के वंश के बहुत बाद के सम्बन्धी हैं, किस प्रकार के जन्तु होते। सम्भवतः हम एक प्रकार के ऐसे स्तनपायी कीड़े होते, जो ठोस दिमाग के होते, जिनका स्नायुमंडल यान्त्रिक उत्तेजनाओं के अनुसार काम करता, एक मस्तिष्कहीन, पेचीदा और हसीन घड़ी की पूर्णता के साथ ही हमारा जीवन शेष हो जाता। अधिक सम्भव है हमारा अस्तित्व ही न होता। यह तो वह थूथन और वह पंकिल स्राव था, जिसने हमारे अस्तित्व को सम्भव बनाया। शायद वहाँ भी, उन सड़ती-गलती मछलियों और रातों जलने वाली दलदली रोशनी के उस शाश्वत-रहस्य, ईश्वर के वरद हाथ का इशारा हुआ हो। वृद्धि कोई अधिक नहीं थी, केवल दो बुलबुले, थूथन के छोटे दिमाग के सिरे पर पतली दीवारों वाले दो गुब्बारे जैसे। प्रमस्तिष्क गोलार्ध (Cerebral Hemispheres) उत्पन्न हो गये थे।

उस टपकते हुए, रिसते द्रव से भरी दुनिया में प्रकृति ने जितने भी प्रयोग किये, उनमें एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण था : मस्तिष्क का पोषण होना ही था। तन्त्रिका-ऊतकों (Nerve Tissues) को काफी मात्रा में, लगातार ऑक्सीजन की जरूरत होती है; अगर उन्हें ऑक्सीजन न मिले तो जीवन खत्म हो जाये। स्थिर दलदली जल में उस खतरे को केवल एक ही तरीके से रोका जा सकता है, और वह तरीका है मस्तिष्क के लिए रक्त-संभरण की बहुत ही कुशल व्यवस्था का विकास। उस हाँफते, मरते हुए जन्तु के बीच केवल यह थूथन और उसकी बिरादरी के जीव ही बच पाये, बाकी अन्य सभी के नन्हें-नन्हें

मस्तिष्क सिल्युरी-युग (Silurian) के दीर्घकालीन सूखे में हमेशा के लिए सो गये थे

इस विचित्र थूथन वाली मछली के छोटे से मस्तिष्क की बाहरी सतह पर अगणित रक्तवाहिनी नाड़ियाँ थीं जिनसे इसे आक्सीजन मिलती रहती, बहुत अधिक बढ़ी हुई रक्तक जालिकाओं (Choroid Plexuses) के द्वारा मेरुदण्ड के तरल पदार्थ में ऑक्सीजन पहुँचायी जाती थी। मस्तिष्क पतली दीवारों की नली-सा था, जिसको दोनों ओर से खुराक मिलती थी और यह ऐसी ही पतली दीवारों वाली चीज के रूप में जीवित रह सकता था, जिससे सीझकर ऑक्सीजन भीतर जा सकती। इसे मोटा बनाना, स्नायु-तन्तुओं का ठोस ढेर लगा देना, जैसा कि ऑक्सीजन घुले हुए जल की मछलियों का मस्तिष्क होता है, भीषण खतरे को आमन्त्रित करना होता। थूथन एक बुलबुले से जिन्दा था, अपने दिमाग के दो बुलबुलों से।

यह इसलिए नहीं था कि उसमें सोचने की ताकत थी, यह तो सिर्फ इस लिए था कि इसे पतला होना ही था। गोलार्धों के छोटे बुलबुलों से उन क्षेत्रों के फैलाव में सहायता मिली जिन पर उच्चतर सह-संबंध केन्द्र (Correlation Centers) बनाये जा सकते थे और साथ ही उन क्षेत्रों को खतरनाक मोटापे से बचाना था, अन्यथा उस दलदल-वासी जीव की दम घुट कर मृत्यु हो जाती। मस्तिष्क की दीवारों के अधिक मोटा हो जाने के परिणामस्वरूप ही, तथाकथित ठोस दिमाग बनते हैं। इस प्रकार के मोटापे का भी एक रहस्य है। कीड़ों, आधुनिक मछलियों, कुछ प्रकार के सरीसृपों और सभी पक्षियों का मस्तिष्क, ठोस होता है। सहज प्रकृति की स्पष्ट विस्तृत रूपरेखाओं का दिखाई पड़ना और विचार-शक्ति का लोप होना इस प्रकार के मस्तिष्क की विशेषता होती है। एक मार्ग ग्रहण कर लिया गया है जिस पर, शरीर-रचना-विज्ञान के अनुसार वापस नहीं लौटा जा सकता, और यह मार्ग चेतना की ऊँची श्रेणी की ओर नहीं जाता है।

इसके बजाय जब कहीं धूसर द्रव्य (Gray Matter) की पतली परतें ऊपर की ओर, मानव-मस्तिष्क के विशाल गोलार्धों में फैलती हैं तो वहीं से हँसी का प्रवेश होता है, या दुःख का भी हो सकता है। डेवोनियन युग (Devonian) के दम घोटने वाले ऑक्सीजनहीन जल से, देखने की शक्ति और ध्वनि का और उस संगीत का जन्म हुआ जो संगीतकार के मस्तिष्क में अदृश्य अँगड़ाइयाँ लेता है। ज्वार-भाटे वाले तटीय क्षेत्र के किनारे-किनारे उस पंकिल स्राव में वे अभी विद्यमान हैं, हालांकि उन पर कोई ध्यान नहीं देता। हम कहते हैं कि दुनिया सुनिश्चित हो गई है, मछली पानी में, पक्षी वायुमंडल में।

लेकिन नाइजर नदी के किनारे-किनारे मैनग्रूव की झाड़ियों वाले दलदलों में, मछलियाँ पेड़ों पर चढ़ जाती हैं और उस बेचैन प्रकृति-विश्व की ओर अजीब दृष्टि से निहारती हैं जो इन्हें वापस पानी में खदेड़ने का असफल प्रयत्न करता है। ऐसी वस्तुएँ हैं, जो अभी भी जल को छोड़, किनारे की ओर आ रही हैं।

भूतकाल की ओर का द्वार एक विचित्र द्वार है। यह एकाएक खुलता है और चीजें उससे होकर गुजर जाती हैं, लेकिन वे केवल एक ही दिशा की ओर जाती हैं। कोई भी मनुष्य उस देहरी को लाघ कर वापस नहीं जा सकता, पर वह पीछे की ओर अभी भी झाँक सकता है और जल में उगने वाली घासों में हरे उजाले को काँपते हुए देख सकता है।

इस दरवाजे तक पहुँचने के दो मार्ग हैं, धरती पर फैले जल-मार्गों के दलदलों से और जहाँ पर नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं वहाँ के ज्वार-भाटे वाले मुहानों से। यही वे दो रास्ते हैं जिनसे होकर जीवन किनारे पर आया। जैसा हम मुग्धभाव से कभी कल्पना करते हैं यह जीवन का समुद्री-दीवारों में होकर, ऊँची चट्टानों को पार कर किया गया शानदार प्रयाण नहीं था। यह तो दमघोंटू आतंकपूर्ण वातावरण में रासायनिक बेचैनी की चुभती हुई सुइयों के बीच चोरी-छिपे आगे बढ़ना था। यह प्रयाण, सागर में असफल रहने के कारण किया गया।

कुछ जन्तु, नमकीन और मीठे पानी के बीच की अदृश्य रासायनिक बाधा को पारकर तट के पास की उन नदियों में आ गये जिनमें ज्वार से सागर-जल आता था, और बाद में यही जन्तु किनारे आ लगे। कुछ अन्य जन्तु सागर-जल से रेंग कर ऊपर किनारे पर चढ़ आये। इन सभी परिस्थितियों में, ऐसा लगता है कि धरती के भय-जनक वायुमण्डल में आने का पहला साहसिक कार्य काफी हद तक इस कारण किया गया था कि जिस जल-क्षेत्र में ये जीव रहते थे वहाँ उनके शत्रुओं की संख्या बहुत बढ़ गई थी और इन जन्तुओं को पीछे हटते-हटते पानी के किनारे की ओर ऐसे इलाकों में आना पड़ा था जहाँ के जल में ऑक्सीजन की कमी थी। अन्त में दलदलों की सीमाओं के क्रूर चुनाव से या तट के ज्वार-भाटे वाले क्षेत्र में भोजन की तलाश के कारण धरती ही उनका घर बन गई।

ज्वार-भाटे वाले क्षेत्रों में रहने वाले कुछ जीवों की एक रोचक बात यह भी है कि वे निश्चित रूप से ज्वार की लहरों के पूर्ण वेग को पसन्द नहीं करते, क्योंकि इससे कीचड़-भरे किनारों पर भोजन ढूँढने में बाधा पड़ती है और लहरों के साथ उनके शत्रु भी आ धमकते हैं। यदि वे किसी कारणवश बहुत भयभीत हो जायँ तभी भाग कर कुछ समय पानी में रहेंगे, अन्यथा नहीं।

यह विचार ने उन्नीसवीं सदी के महान् जीवाश्मविज्ञानवेत्ता (Paleontologist) कोप (Cope) ने पहले-पहल इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और उसने इसे 'विशिष्टता-हीन का नियम' (Law of the unspecialised) कहा। उनका कहना यह था कि किसी एक भूवैज्ञानिक (Geological) युग में, नये पैदा होने वाले जीवों के उत्कृष्ट प्रकार अपने पूर्ववर्ती युग के सबसे अधिक संगठित और प्रमुख प्रकार के जीवों से विकसित नहीं हुए, बल्कि उत्कृष्ट प्रकार के जीवों का विकास सामान्य और कम विकसित जीवों से हुआ, सामान्य प्रकार के उन जीवों से जो अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के योग्य थे और जो एक विशेष प्रकार के वातावरण में सीमित रहने के अभ्यस्त नहीं थे।

इस बात में काफी सचाई है, परन्तु यह सब होने पर भी यह विचार सरल नहीं हो जाता। भविष्य के पूर्वज्ञान के बिना कौन यह कह सकता है कि कौन-सा जीव विशिष्टता-प्राप्त है और कौन नहीं? विशिष्टताहीनों के नियम से किस प्रकार की उलझनें हो सकती हैं, यह हमें सिर्फ अपने दूर के पूर्व-पुरखा 'थूथन' पर विचार करने से ज्ञात हो जायेगा।

यदि हम पुराजीवक (Paleozoic) युग में प्राणि-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन कर रहे होते और हमें इस बात की कोई जानकारी न होती कि जीवन भविष्य में किन-किन विचित्र क्षेत्रों में प्रवेश करेगा तो शायद हम उस थूथन को 'विशिष्टता-प्राप्त' जीव मानते। हम उसका हवा-थैले जैसा फेफड़ा देखते, उसके मजबूत ठूँठ-जैसे धीमी-गति वाले डैने और उसकी धरती पर साँप की तरह रेंगने की विचित्र सामर्थ्य को देखते और उसे स्थिर महाद्वीपीय जल के अजीब, सीमित वातावरण में अपने को रह सकने योग्य बनाने की विशिष्टता प्राप्त करने वाला जीव कहते। लेकिन जल के जीवन के आधार पर विचार करने पर हम 'थूथन' को विकास-क्रम की मुख्य धारा से अलग, एक दिलचस्प और असफल जीव मानते, जो अपने शत्रुओं से बच कर केवल अजीब, उदास-उदास से सीमित वातावरण ही में रह सकता है। ऐसा वातावरण जिसमें पूर्ण विकसित और तेज डैनों वाली टेलिओस्ट (Teleost) वर्ग की मछलियाँ झाँकना भी पसन्द नहीं करती थीं जो आगे चल कर समुद्रों और अन्य जल-धाराओं पर राज करने वाली थीं।

लेकिन फिर भी यही साधारण विशिष्टता—कीचड़ में फँस जाने की असफलता—वाला ही वह जीव था जिसकी आगे की सन्तानें तीन महान् चरणों में इस पृथ्वी पर राज करने वाली थीं। यह तो अब भूतकाल पर दृष्टिपात करते हुए हम उसे सामान्य प्रकार के गुणों वाला जीव मानने का साहस करते

हैं। वह थूथन ही पहला कशेरुकी (Vertebrate) प्राणी था जो पानी की झिल्ली से पूरी तरह निकल कर एक नये विस्तृत लोक में आया। जल के जीवन के अर्थों में उसकी अपनी विशिष्टताओं और असफलताओं ने उसे पहले ही एक ऐसी दुनिया के अनुकूल बना दिया, जिसके अस्तित्व के बारे में उसे शायद ही पता था।

थूथन का युग तीस करोड़ वर्ष से भी बहुत पहले था। कुछ दिन हुए मैंने एक पुस्तक पढ़ी थी जिसमें एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने बड़े उल्लास के साथ इस बात की चर्चा की है कि हमारे लिए अभी करीब एक खरब वर्ष का भविष्य और है। उन्होंने खुशी-खुशी उन बातों की ओर ध्यान दिलाया है जो इस अवधि मे मनुष्य कर सकता है। मैंने फिर सोचा—मछलियाँ जल में, पक्षी आकाश में। हमारी इस मंजिल तक पहुँचने का सारा पिछला रास्ता, जीवों की जातियाँ पूरी तरह से विकसित हो गई हैं और सुनिश्चित हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि मेरे उस खोजी मित्र को कीचड़ में रहने वाली उन मछलियों को देख कर एक क्षणिक हड़बड़ाहट हुई थी जिन्हें देख लगता था कि वे अपने मन में कुछ छुपाये हुई हैं और उनमें जीवन के प्रति उत्साह का अभाव है। विश्व-सम्बन्धी हमारे विचार मे कहीं कोई गड़बड़ी है। इसमें अभी भी टोलेमी का प्रभाव शेष है, हालाँकि अब इस बात पर कोई विश्वास नहीं करता कि सूर्य पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाता है।

हम भूतकाल के बारे में बातें करते हैं, हम बीते हुए युगों के बारे में जितना जानते हैं, हमसे पहले कोई भी जाति इतना नहीं जानती थी, लेकिन हम वर्तमान पर आकर रुक जाते है या अधिक-से-अधिक, सुदूर भविष्य में स्वयं अपने ही आदर्श रूपों को प्रतिक्षिप्त कर देखते हैं। बीते हुए युगों के उस लम्बे रास्ते को हम सिर्फ मनुष्य की आँखों से देखते हैं और शायद यह अवश्यम्भावी भी है। हम अपने को ही लक्ष्य भी समझते हैं और रास्ते का अन्त भी, और यदि कभी हम मानव जाति की समाप्ति की बात सोचते हैं तो उसके साथ यह भी सोचते कि तब सूर्य का प्रकाश ही खत्म हो जायेगा और पृथ्वी अन्धकारमय हो जायेगी। हम ही अन्त हैं, हमारे ही लिए महाद्वीप प्रकट हुए और विलीन हो गये, हमारे ही लिए जल और वायु पर अधिकार किया गया, हमारे लिए ही चेतना का यह जाल स्पन्दित हुआ और अधिक जटिल बना।

एक बार मुझसे एक आदमी ने कहा कि इस बात से इनकार करना ईश्वर के अस्तित्व से इनकार करना है। इस बात को सुनकर मैं बड़ा चकराया। मैं रास्ते-रास्ते वापस दलदल की ओर गया। मैं गया तो, पर न तो भूतकाल में, न मृत जीवों की हड्डियों के लिए, और न उस खोये हुए मार्ग की

हा ओर गया, जिससे हाकर वह 'थूथन' आगे बढ़ा था। मैं दिन के प्रकाश मे, वर्त्तमान काल में उस ओर गया था। यह देखने के लिए कि वह भूतकाल का द्वार अभी भी वहीं है या नहीं, और यदि है तो उससे होकर कौन गुजर रहा है।

मैंने देखा कि वहाँ पहले के वही प्रयोग अभी भी हो रहे हैं; उस प्राचीन कुएँ के बाहर की ओर मछलियों के डैने अभी भी सूर्य के प्रकाश की ओर घिसटते-रेंगते बढ़ रहे हैं। ये छोटी-छोटी बातें थीं और उनमें से कौन भविष्य की ओर इंगित करती है, यह मैं नहीं कह सका। मैंने केवल यह देखा कि वे अनेक हैं और उन्होंने जल में ऑक्सीजन के अभाव में होने वाली मृत्यु की समस्या को कई अद्भुत उपायों से हल कर लिया है। और उनमें कई उपाय हमारे उपायों से भिन्न थे।

मैंने देखा कि वहाँ कुछ ऐसी आधुनिक मछलियाँ थीं जो हवा में साँस लेती थीं, फेफड़ों की सहायता से नहीं बल्कि अपने आमाशय या गलफड़ों के स्थान पर बने विचित्र ढंग के कक्षों से, या फिर उसी प्रकार साँस लेतीं जैसे कि कभी थूथन लेता था। मैंने देखा कि उनमें से कई रात के समय कीड़ों का पीछा करते हुए खेतों में रेंगतीं या तालाब के किनारे घास में सोई रहतीं। यदि उन्हें पानी के नीचे रख दिया जाय तो वे ठीक उसी तरह डूब कर मर जाती जैसे कि मनुष्य डूब कर मर सकता है।

इन मछलियों में विचित्रतम पेरियोपथैलमस (Periophthalmus) नामक कीचड़ में फुदकने वाली मछली है। वह अपने डैनों की सहायता से पेड़ों पर चढ़ जाती है और कीड़ों का पीछा करती है। समुद्र के किनारे राबिन चिड़िया की तरह कीड़े पकड़ती हैं। उसकी देखने की शक्ति पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओं जैसी होती है। इन सबके अलावा वह एक अजीब तरह से बेधड़क इस प्रकार चकमा देती हुई बच निकलती है जिसे देख समुद्र के बजाय जमीन के जीवों का-सा आभास होता है। एक अलग काल, और भिन्न जाति की होने पर भी इस मछली को देख कर अनजाने ही थूथन की याद आती है।

पर यह हूबहू पहले जैसा नहीं है। और इसी में जीवन की आशा निहित है। पुराने उपायों का प्रयोग हो रहा है और वे अभी भी वैसे ही हैं, लेकिन विकास नई चीजों का हो रहा है, नई ज्ञानेन्द्रियाँ अपरिचित वातावरण मे परीक्षण कर रही हैं। अन्धकार में भाग-दौड़ की आवाजें और हलके छपाके सुनाई दे रहे हैं, कुछ चीजें तेजी से करवटें-सी ले रही हैं और इन्हीं से प्रथम टर्राने की आवाज निकलती है, भविष्य में बनने वाले जीवों की अशिक्षित ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक बार उस छोटे से आशयिक-

अग्रिम मस्तिष्क (Vesicular Forebrain) में अनबूझे धुँधले स्वप्न देखते हुए मनुष्य बोला था।

हम लगातार बिना विश्राम किये अनुसन्धान करते हैं, छोटी-छोटी बातों पर झगड़ते हैं और एक-दूसरे के साथ सहमत नहीं हो पाते। वह शाश्वत रूप—वह रूप जिसे हम अपना ही जैसा समझते हैं—हमारी पकड़ में नहीं आता। संभव है दलदल से होकर आने वाला वह प्राचीन मार्ग हमारा मार्गदर्शन कर दे। हम उस वस्तु के कई रूपों में से एक हैं जिसे जीवन कहते हैं, हम इसके सम्पूर्ण स्वरूप नहीं हैं क्योंकि सिवाय 'जीवन' के इसका दूसरा कोई स्वरूप नहीं है और जीवन बहुमुखी है और काल के प्रवाह में अवतरित होता है।

५. फूलों ने दुनिया को कैसे बदला

●

यदि सौरमण्डल के किसी सुदूर पार्श्व से पृथ्वी को देखना सम्भव होता तो भूवैज्ञानिक युगों की लम्बी अवधि में, देखने वालों को हमारे ग्रह से निकलने वाले प्रकाश में सूक्ष्म परिवर्त्तन दिखाई पड़ता । बहुत पुराने जमाने की दुनिया, मंगल ग्रह के लाल रेगिस्तानों की तरह लगती और दिखाई पड़ता पत्थरों और बजरी के विशाल स्थानान्तरित होते ढेरों से दूर-दूर तक फैले, वीरानों की रेत से, काली-नंगी चट्टानों से और चलते हुए झंझावातों की पीली धूल से टकराकर आते प्रकाश का दृश्य । केवल बादलों की निरन्तर गतिविधि से और समुद्र की अशान्त सतह पर कभी-कभार होने वाली कौंध के कारण जो दृश्य दिखाई पड़ता वह कुछ भिन्न होता, पर मुख्यतया वह दृश्य भी उजाड़ दुनिया का ही होता । उसके बाद सहस्राब्दियाँ बीतती जातीं और युग के पीछे युग बीतते जाते, फिर धीरे-धीरे पृथ्वी की मीलों फैली सतह से एक नया और हरा-हरा-सा प्रकाश आता दिखाई देता ।

इतनी दूर से अपने सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता से देखने वाले को पृथ्वी ग्रह के सारे इतिहास में केवल इतना ही अन्तर दिखाई देता । फिर भी धीरे धीरे हरेपन में बदलती उस टिमटिमाहट द्वारा ज्वार-भाटे के पंक से निकल कर कोरे निरावरण महाद्वीपों की ओर जीवन के महाप्रयाण का आभास मिलता रहता । सागर के विशाल रासायनिक कुण्ड से—गहराई से नहीं बल्कि विविध तत्त्वों से परिपूर्ण और सूर्य के प्रकाश से चमचमाते उथले जल-तल से—फैलती-मटकती उँगलियों की तरह की हरियाली टेढ़ी-मेढ़ी नदी-धाराओं के किनारे-

किनारे ऊपर की ओर फूटती दिखायी देती और भूली-बिसरी झीलों के आगे और रेतीले तटों पर घेरा बनाते दिखायी देती।

प्रारम्भ के उन युगों के पौधे अपनी जरूरत के कारण कीचड़ वाले इलाकों और पानी के पास ही लगे होते। उनके उत्पादन और वृद्धि की विधि कुछ ऐसी थी जिसके लिए पानी की आवश्यकता होती थी। दलदलों के चारों ओर और नदियों के किनारों पर उगे हुए आरम्भिक पर्णांगों (Ferns) और मॉस (Moss) के अलावा धरती के बाकी हिस्सों में दूर-दूर तक नंगी चट्टानें खुली पड़ी थीं, निरावरण ग्रह पर अभी भी धूल के बवंडर मँडराते थे। आज घास की जो चादर धरती की ऊपरी परत को अपने स्थान पर सँभाले हुए है, वह उस समय, लाखों वर्ष पूर्व, भविष्य की चीज थी। यह बढ़ती हुई हरियाली धरती पर जलभीगे कदम जमाने से अधिक कुछ नहीं कर सकी थी। उनमें सन्तानोत्पत्ति बीजों द्वारा नहीं बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म, तैरते हुए शुक्र-कणों (Sperm) द्वारा होती थी। मादा बीज-कोष का संसेचन (Fertilization) करने के लिए इन्हें पानी में तैर कर जाना पड़ता था। इस तरह के पौधों के अन्य विकसित रूपों ने इस कार्य के लिए अत्यन्त कुशलता से वर्षा-जल का प्रयोग करना शुरू कर दिया था और अपने-आप को उसके अनुकूल बना लिया था। आगे चलकर ये पौधे नम जमीन और नमी के वातावरण में अधिकाधिक सफलता से जीवित रहने लगे। अब ऐसा लगता है मानो ये पौधे मनुष्य के वातावरण के ही अंग हों। लेकिन सत्य यह है कि प्रकृति में 'सामान्य' नाम की कोई चीज होती ही नहीं। एक समय ऐसा था कि इस पृथ्वी पर फूलों का नामोनिशान नहीं था।

कुछ ही समय पूर्व, लगभग दस करोड़ वर्ष पहले, जैसा कि चालीस खरब वर्ष की आयु के इस ग्रह की इस अवधि के बारे में भूवैज्ञानिकों ने अनुमान किया है—इस पृथ्वी के पाँचों महाद्वीपों में कहीं भी फूल नहीं पाये जाते थे। यदि उस युग में किसी ने ध्रुव-प्रदेशों से लेकर भूमध्यसागर तक यात्रा की होती तो उसे केवल एक-सी ठण्डी गहरी हरियाली ही भर दिखती, उस युग की दुनिया में सम्पूर्ण वनस्पति-जगत् का केवल एक ही रंग था, हरा रंग।

सरीसृपों के युग की समाप्ति से कुछ ही पहले इस धरती पर कहीं किसी कोने में एक ध्वनिहीन प्रबल विस्फोट हुआ। यह लाखों वर्ष तक होता रहा पर यह था एक विस्फोट ही। इसी के साथ आवृत बीजों (Angiosperms) का, पुष्पित होने वाले पेड़-पौधों का उद्‌भव हुआ। महान् विकासवादी चार्ल्स डार्विन तक ने इस प्रकार के पेड़-पौधों को विकट रहस्य (Abominable

mystery) की संज्ञा दी थी, क्योंकि ये जितने अकस्मात् उत्पन्न हुए उतनी ही शीघ्रता से चारों ओर फैल गये।

फूलों ने इस ग्रह का सारा रूप ही बदल डाला। फूलों के बिना हमारी आज की परिचित दुनिया का, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य का भी अस्तित्व न होता। अंग्रेजी के एक कवि फ्रैन्सिस थाम्पसन ने एक बार लिखा था कि कोई भी व्यक्ति किसी नक्षत्र को क्षुब्ध किये बिना फूल नहीं तोड़ सकता। उन्हें एक प्रकृति-विज्ञ की तरह सम्पूर्ण जगत् से गुँथी और परस्पर सम्बद्ध जीवन की व्यापक जटिलताओं की अनुभूति हो गई थी। आज हम यह बात जानते हैं कि फूलों के उद्भव में उन्हीं की तरह रहस्याच्छादित मानव का उद्भव भी निहित था।

यदि हम सरीसृपों के युग मे पहुँच जायँ तो उसके पक्षी-विहीन वनों और जलमग्न दलदलों में हमें एक गरम लेकिन आज की दुनिया से कहीं ज्यादा सुस्त, और आलसी जगत् के दर्शन होंगे। यह सच है कि यहाँ-वहाँ धरातल से भरण-पोषण प्राप्त करने वाले साँपों के से सिर वाले भीम सरट (Dinosaurs), अपने ही समय के विशालकाय मांसभक्षी जीवों के भय से पिछले पैरों पर आशंकित खड़े होंगे। मनुष्यों के कार्टून से लगने वाले विशाल दोपाये दैत्य सरट (Tyrannosaurs) भावी नगरों के स्थानों पर विवेक-शून्य भाव से ऐंठते-चलते होंगे और धीरे-धीरे भूविज्ञानीय काल के महा अन्धकार में प्रविष्ट होते जा रहे होंगे।

उस जीव-जगत् का कोई भी प्राणी अपने शिकार का पूरा ध्यान केन्द्रित करने के अलावा और कुछ नहीं देखता था, सहज प्रवृत्ति से परिचालित मस्तिष्क की मोहनिद्राविष्ट चाल के अलावा किसी में कोई गति नहीं थी। आधुनिक प्रतिमानों की तुलना में यह एक धीमी गति वाली दुनिया थी—ठण्डे खून की दुनिया, जिसमें रहने वाले, भरी दोपहरी में सबसे अधिक गतिशील रहते और रात की शीत के साथ आलस्य से भर उठते, बहुत धीमी शारीरिक क्रियाओं के कारण उनके दिमाग बहुत सुस्त थे और उनकी शारीरिक क्रियाएँ, आधुनिक युग के, गर्म खून वाले किसी भी ज्ञात प्रारम्भिक जन्तु से ज्यादा मन्द थीं।

जीवन-क्रियाओं की गति का बहुत बढ़ जाना और शरीर का तापमान सदा एक-सा रहना जीवन-विकास की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ हैं। इनकी सहायता से जीव-जन्तु बहुत हद तक अपने चारों ओर के बहुत अधिक ताप और शीत से बच जाता है और साथ ही अपनी मानसिक क्षमता भी बनाये रखता है। जिन जीवों में जीवन-क्रियाओं की गति मन्द होती है वे मौसम के दास होते हैं। बहुत से कीड़े आदि शरद् के पहले पाले के साथ ही निर्जीव से होकर

गिर पड़ते हैं जैसे कि चाभी न मिलने के कारण छोटी-छोटी घड़ियाँ बन्द हो जाती हैं। ऐसी हालत में यदि आप कीड़े को उठा कर उसे अपनी साँस से गरम करें तो वह एक बार फिर हरकत करने लगेगा।

इस प्रकार के जीव, जाड़ों के दिनों में किसी सुरक्षित स्थान में सोये रहते हैं लेकिन इस बीच वे बिलकुल असहाय और गतिहीन होते हैं। हालांकि कुछ आधुनिक समय के वुडचक (Woodchuck)—वुडचक, बहुत बड़े चूहे जैसा अमरीकी जन्तु होता है, जो जाड़ों में लम्बी नींद लेता है—जैसे गर्म खून वाले स्तनपायी जन्तुओं में भी ऐसी शारीरिक क्रिया का विकास हुआ है जिससे वे अपनी शीतकालीन दीर्घ निद्रा के लिए अपने शरीर में जीवन-क्रियाओं की गति बहुत धीमी कर लेते हैं। लेकिन यह कठिन परिस्थितियों में जीवित रह सकने का एक तरीका है और इसमें कई कमियाँ हैं। क्योंकि यदि इस प्रकार की निद्रावश, अल्पकाल के लिए इस अर्द्ध-चेतन जीव को उसका कोई शत्रु देख ले तो उस निस्सहाय पड़े जन्तु का जीवित रह सकना कठिन हो जाये। इसलिए चाहे ध्रुव प्रदेश का भालू हो या 'वुडचक', अर्थात् छोटे-बड़े प्रत्येक ऐसे जन्तु को, दीर्घकालीन निद्रा लेने से पहले कोई माँद या सुरक्षित स्थान खोजना जरूरी हो जाता है। इसलिए दीर्घ निद्रा का उपाय, मुख्यतया छोटे जन्तुओं की शीतकालीन सुरक्षित व्यवस्था है अर्थात् ऐसे जन्तुओं की जो किसी बड़े जन्तु की अपेक्षा सरलता से छुप सकते हैं।

फिर भी जीवन-क्रियाओं की गति तेज होने का अर्थ है शरीर में क्षमता और गर्मी बनाये रखने के लिए अधिक शक्ति का व्यय होना। यही कारण है कि बाद में पैदा होने वाले, इस प्रकार के कुछ आधुनिक स्तनपायी जीव भी जाड़ों में कठिनाई से भोजन प्राप्त होने के कारण उस अवधि में मन्द, अर्द्ध-चेतन गति से जीना सीख गए। कुछ ऊँचे स्तर पर वे उसी विधि का अनुसरण करते हैं जिसका पालन, शीतकाल में जमे तालाब के नीचे, कीचड़ में सोया, ठण्डे रक्त वाला मेंढक करता है।

गरम खून वाले पक्षियों और स्तनपायी जीवों के मस्तिष्क को बहुत अधिक ऑक्सीजन देने की और अत्यधिक पौष्टिक खाद्य की आवश्यकता होती है। यदि ये दोनों वस्तुएँ उचित परिमाण में प्राप्त न हों तो अधिक समय तक इन जीवों का जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। फूल वाले पौधों के पैदा होने से ही इन जीवों को आवश्यक शक्ति प्राप्त हुई और इससे जीव-जगत् की प्रकृति ही बदल गयी। एक आश्चर्यजनक ढंग से पुष्पधारी-वनस्पति के साथ-ही-साथ पक्षियों और स्तनपायी जीवों का भी उदय हुआ।

सरीसृप-युग के शैशवकाल में, लगभग पच्चीस करोड़ वर्ष पहले, वर्षा-जल

या ओस की बूँदों की सहायता से रेंगते-तैरते नग्न शुक्र-कोशों का स्थान एक प्रकार के पराग-कणों ने ले लिया, जो वायु के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ते हुए जा सकते थे। आधुनिक युग के चीड़ और देवदार जाति के वृक्ष, इसी प्रकार हवा में पराग-कणों को बिखराने वाली वनस्पति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार जल-संसेचन क्रिया (fertilization) बाहरी जल पर निर्भर नहीं रही तो वनस्पति का पहले की अपेक्षा अधिक खुश्क इलाकों में फैलना सम्भव हो गया। पहले के बीजाणुओं (spores) के स्थान पर अब एक सादे किस्म के बीज का विकास हो गया था, ऐसे बीज का जिसमें नये अंकुरित होने वाले पौधे के लिए पोषक-पदार्थ भी विद्यमान था, फिर भी वास्तविक फूल, अभी भी लाखों वर्ष दूर की चीज थे। विकास-क्रम की प्रारम्भिक हिचकिचाहट-भरी अवधि के बाद, वे इस दुनिया में वस्तुतः क्रान्तिकारी ढंग से प्रस्फुटित हुए।

यह घटना क्रिटेशस-युग (cretaceous) में सरीसृपों के युग की समाप्ति पर हुई। पुष्पधारी-पौधों के आने से पहले, हमारे पूर्व-पुरखे अर्थात् गर्म खून वाले स्तनपायी, बहुत थोड़े से चूहों-चुहियों जैसे झाड़ियों और पेड़ों में छिपे रहने वाले छोटे-छोटे जीव थे। इस काल में मांस-भक्षी दाँतों वाली छिपकलियों-जैसे कुछ पक्षी थे जो पुरातन-युग की विशाल झाड़ियों में इधर-से-उधर असन्तुलित उड़ानें भरते थे। इन महत्त्वहीन जीवों में किसी में भी कोई विशेष प्रतिभा नहीं दिखाई देती थी। विशेष रूप से स्तनपायी जीवों को पैदा हुए कई लाख वर्ष हो चुके थे, लेकिन विशाल सरीसृपों की दैत्याकार छायाओं में वे जैसे खो-से गए थे। यदि सच कहा जाय तो उस काल में मनुष्य एक चूहे जितने आकार के शरीर में, बोतल-बन्द दानव की तरह कैद था।

जहाँ तक पक्षियों का सवाल है, उनके मुकाबले उन्हीं के रेंगने वाली बिरादरी के टेरोडैक्टाइल उनसे कहीं अच्छी और दूर-दूर तक उड़ानें भर लेते थे। परन्तु पक्षियों में एक बात ऐसी थी जो स्तनपायी जन्तुओं की शारीरिक क्रिया से मेल खाती थी और वह बात थी, शरीर का तापमान नियंत्रण करने वाली गर्म खून की व्यवस्था। इतना होने पर भी यदि कोई उन पक्षियों के पंखहीन शरीरों को देखता तो वे कुछ अस्वाभाविक अनदेखी छिपकलियों से दिखाई देते।

इतना सब होने पर भी स्तनपायी जीव और पक्षी केवल वैसे ही नहीं थे जैसा कि वे बाहरी तौर पर देखने में लगते थे। वे सब, फूलों के युग की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस वस्तु की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसे फूल, अपने बीजों के साथ उनके लिए लाने वाले थे। उस समय, अपने पंखों के एक ओर से दूसरी ओर तक अट्ठाईस-अट्ठाईस फुट लम्बे, चमड़े के पंखों वाले, विशाल

मछलीखोर सरीसृप पक्षी, उन तटों के ऊपर मँडराते थे जिन पर आगे चलकर, समुद्री-पक्षियों (gulls) के दल-के-दल क्रीड़ा करने वाले थे।

धरती के भीतरी भागों में, अपने प्रारम्भिक काष्ठ शंकु-फूलों सहित चीड़ और स्प्रूस आदि के जंगलों की एकरस हरीतिमा दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके नंगे बीजों को धरती पर पहुँचने से रोकने के लिए घास का एक तिनका भी कहीं नहीं था। ये विशाल वृक्ष आसमान से बातें करते थे। उस काल की दुनिया का एक विशेष आकर्षण है पर यह किसी दानव की दुनिया है, एक ऐसी दुनिया जो उन सरीसृपों की तरह मन्द गति से चलती है जो उसके विशाल-वृक्षों के तनों के बीच, सिर उठाये धीरे-धीरे शान से घूमते फिरते हैं।

इस युग के पेड़ भी स्वयं पुरातन युग के है, ये 'रेडवुड ट्रीस' के उन पेड़ों की तरह विशाल हैं जो धीरे-धीरे बढ़ते हैं और आज भी कैलिफोर्निया-तट पर बचे रह गये हैं। इस दुनिया में सब कुछ कठोर-बेलोच, औपचारिक, सीधा और हरा है, बिलकुल एकरस हरा। अभी घास का कहीं पता नहीं है, दूर तक फैले, चौड़े, धूप-भरे मैदान नहीं हैं, चरागाहों के ऊपर रंगभरे बिन्दुओं-सी डेज़ी का नामोनिशान नहीं है, इसके दृश्यों में विभिन्नता का लगभग अभाव ही है, यह सचमुच ही एक दानव की दुनिया है।

कुछ रात पहले मुझे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गई कि सुदूर के उस अतीत युग के बाद से दुनिया बदल गई है। उस रात एक अज्ञात ध्वनि सुनकर मैं एकाएक नींद से जाग पड़ा। यह कोई हलकी आवाज़, जैसे किसी चरमराते शहतीर या चूहे की उछल-कूद नहीं थी—बल्कि एक तीव्र, विस्फोट करती-सी ध्वनि थी मानो असावधानीवश किसी के पैर शराब के प्याले पर पड़ गये हों। आवाज़ सुनते ही मैं नींद से जाग उठा और साँस रोके, स्तब्ध पड़ा रहा। मैं एक और कदम की आहट सुनने के लिए कान लगाये रहा पर कोई और क़दम, किसी और प्याले पर नहीं पड़ा।

अनिश्चय की इस स्थिति को मैं अधिक देर तक सहन न कर सका, मैंने उजाला किया, और कुर्सियों, आलमारियों आदि के पीछे बेचैनी से झाँकते हुए, कमरे-कमरे में तलाश शुरू कर दी। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं थी और मैं बैठने के कमरे के फर्श के बीच, घोर उलझन में फँसा, खड़ा हो गया। तभी कालीन पर बटन के आकार की एक वस्तु पर मेरी दृष्टि पड़ी। वह सख्त, चिकनी और चमकदार थी। कमरे में इधर-उधर और भी कई ऐसी वस्तुएँ, छोटी-छोटी सतर्क आँखों की तरह चमक रही थीं। छोटी मेज़ के ऊपर एक तश्तरी में रखा देवदारु का शंकु (Pine cone) मेज़ की दूसरी ओर जा गिरा था। वह तश्तरी इस विस्फोट का कारण नहीं हो सकती थी। उसके पास ही मैंने

मखमली हरे रंग के दो फीते जैसे टुकड़े पड़े देखे। मैंने उन दोनों फीतों को मिलाकर एक फली-जैसा बनाना चाहा, वे बार-बार मुड़ जाते और किसी भी तरह एक-दूसरे से जुड़ने को तैयार नहीं हुए।

तब मैं एक कुर्सी पर बैठ कर सुस्ताने लगा, क्योंकि अब मुझे आधी रात में हुई गड़बड़ी का रहस्य मालूम हो गया था। वे मुड़े हुए फीते जैसे दो टुकड़े विस्टेरिया की फलियों के टुकड़े थे जिन्हें मैं एक-दो दिन पहले लाया था और लाकर तश्तरी में रख दिया था। इन फलियों ने, अपनी वर्द्धमान जीवन-निधि को कमरे भर में वितरित करने के लिए, आधी रात के समय फूटना पसन्द किया। अपनी जड़ों के बन्धन में बँधे एक स्थान पर जमे, स्थिर और अचल पौधे ने अपनी सन्तानों को खुले स्थान में दूर-दूर तक फैलने का उपाय खोज निकाला था। उसी समय मेरे मस्तिष्क में कई प्रकार की फलियों के उड़ते हुए बीजों की फौज-की-फौज कौंध गई, और इन बीजों की झलक दिखाई देने लगी जो अपने काँटों, हुकों आदि से, जानवरों के शरीर और मनुष्यों के कपड़ों में चिपक कर दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं। भेड़ों आदि की दुम में चिपके हुए बीज, शिकारी के कोट में लगे बीज, हवा के पंखों पर सवार गोखरू—सभी के सभी जीवन को सीमित रखने वाली सीमाओं को तोड़ कर आगे बढ़ने में लगे हैं। यह सब होने पर भी इतना सब कुछ कर सकने की योग्यता उनमें शुरू में नहीं थी। यह अनवरत प्रयत्नों और प्रयोगों का परिणाम था।

मेरी कालीन पर जो बीज पड़े थे वे अपने पुरातन काल के बन्धुओं देवदार-शंकु के नग्न बीजों की तरह एक ही स्थान पर चुपचाप पड़े रहने वाले बीज नहीं थे। वे साहसी यात्री थे। इस विचार से प्रेरित होकर दूसरे दिन मैं बाहर गया और मैंने कई प्रकार के बीज इकट्ठे किये। अब मैंने उन्हें अपनी मेज पर एक कतार में सजाया है। ये जीवन के कितने छोटे-छोटे प्रकोष्ठ हैं पंखों वाले, कांटों या शूलों वाले। इनमें से प्रत्येक एक आवृत बीज (Angiosperm) है—सच्चे फूलों वाले पेड़ों की पैदावार। इन छोटे-छोटे डिब्बों के अन्दर सुदूर अतीत काल, क्रिटेशियस युग के दस करोड़ वर्ष पूर्व के उस विस्फोट का रहस्य बन्द है जिसने हमारे ग्रह के रूप को बदल डाला था। किसी घास के विशेष कड़े बीज के छिलके को दबाते हुए मैंने सोचा कि उस काल में स्वयं मनुष्य भी यहीं कहीं इन्हीं में रहा होगा।

डाइनोसार युग की समाप्ति के आस-पास जब धरती के किसी ऊपरी इलाके में पहला फूल खिला तो उसमें परागकणों का वितरण और पराग-सेचन (Pollination) अपने पहले के सम्बन्धी देवदारु आदि जातियों की वनस्पति की तरह होता था। वह कुछ इस तरह का फूल था जिसकी ओर किसी का

ध्यान ही नही जाता था क्योंकि इस फूल में अभी, पराग-कणों के वितरण के लिए पक्षियों आदि को आकर्षित करने के विचार का विकास नहीं हुआ था। यह अपने पराग को, बोने के लिए, हवा की मर्जी पर छोड़ देता, और उसी की मर्जी से दूसरे पौधों का पराग ग्रहण कर पाता था। आजकल भी जिन स्थानों में कीड़े-मकोड़े बहुत कम पाये जाते हैं वहाँ के पौधे इसी सिद्धान्त का पालन करते हैं। जो भी हो, इस वास्तविक फूल ने जिस बीज को जन्म दिया, वह प्राणि-जगत् में एक बहुत ही गहन और महत्त्वपूर्ण, नया आविष्कार था।

एक तरह से, वनस्पति-जगत् की इसी घटना की भाँति ही जीव-जगत् (Animal world) में एक घटना हुई। किसी मछली द्वारा बाहर दिये हुए अण्डों के बच जाने की अपेक्षाकृत सम्भावनाओं पर विचार कीजिये और इसी की तुलना में स्तनपायी जीवों के संसेचित अण्डों के बारे में विचार कीजिये जो कि महीनों तक माँ के पेट में सावधानी के साथ रखा रहता है जब तक कि वह शिशु जीव (अथवा मानव प्राणी) इस रूप में विकसित नहीं हो जाता कि अपनी जीवन-यात्रा सकुशल सम्पन्न कर सके। इस स्थिति में जीव विनाश न्यूनतम होता है—और ऐसे ही पुष्पधारी पौधे में भी होता है। शुरू में एक तैरते हुए शुक्र-कण द्वारा संसेचित अकेले बीजाणु से, वनस्पति के तेजी से फैलने में सहायता नहीं मिल सकती थी, और इसके अतिरिक्त इस तरह पैदा हुए नन्हे पौधे को जीवित रहने के लिए एकदम शुरू से ही संघर्ष करना पड़ता था। बिना किसी की सहायता के वह स्वयं जो कुछ जुटा सकता था, उसके सिवा उस नन्हे पौधे के लिए किसी ने कोई खाद्य सामग्री की व्यवस्था नहीं कर रखी थी।

इसके विपरीत वास्तविक फूल वाले पौधों के पुष्पों के भीतर एक बीज पैदा होता है [जैसा कि आवृत बीज (Angiosperm) का अर्थ है बन्द बीज], एक ऐसा बीज जिसके विकास का समारम्भ, संसेचन करने वाले एक परागकण द्वारा बाहरी जल की सहायता के बिना ही हुआ। विकसित होते बीजाणु के विपरीत, सामान्य बीज सभी प्रकार से तैयार भ्रूणावस्था का एक पौधा होता है जो ऐसी डिबिया में बन्द रहता है जिसमें उसके उपयोग के लिए पोषक पदार्थ भरे रहते हैं। इसके अलावा यह डेण्डेलियन नाम के जंगली फूलों के बीजों की तरह अपने पंखों की मदद से हवा के झोंकों पर सवार होकर मीलों दूर की यात्रा कर लेता है या अपने हुकों, काँटों और शूलों की मदद से भालू, खरगोश आदि की पीठ पर चिपक कर दूर पहुँच जाता है या फिर कुछ बेरियों की तरह अपने रसीले फलों से पक्षियों को लुभा कर अपनी ओर खींचता है, जो उसे खाकर अपनी-अपनी भूख मिटाते हैं और फिर यह उनकी आँतों से होता हुआ बिना पचे विष्ठा-रूप में मीलों दूर जा पहुँचता है।

प्राणि-जगत् के इस आविष्कार की अगणित शाखाएँ-प्रशाखाएँ बन गईं। पौधों ने इतनी तेजी से यात्राएँ करनी शुरू कीं जितना कि पहले कभी भी देखा-सुना नहीं गया था। वे ऐसे-ऐसे विचित्र वातावरण में जा पहुँचे, जहाँ उनके पहले के बीजाणु वाले, या देवदारु-स्प्रूस आदि जाति के शंकु-बीज वाले पौधे कभी भी नहीं जा पाये थे। सावधानी से पाले-पोसे, प्रचुर पोषण प्राप्त पौधों के भ्रूण जहाँ-तहाँ अपने सिर उठाने लगे। बहुत से पुराने किस्म के पौधे इस असमान प्रतियोगिता के आगे धीरे-धीरे खतम होने लगे। उनके क्षेत्र सीमित हो गये। विशाल रेडवुड जैसे कुछ पेड़ भग्नावशेषों की तरह बचे रह गये और बहुत अन्य पौधे बिलकुल ही नष्ट हो गये।

दानवों की वह दुनिया नष्ट होने वाली दुनिया थी। इन नन्हे आश्चर्य-जनक बीजों में, इन उछलते-कूदते, जंगलों और घाटियों के ऊपर उड़कर जाने वाले बीजों में, अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की अद्भुत क्षमता थी। यदि हमारा सारा जीवन इन बीजों के साथ ही न बीता होता तो हम उन्हें देख कर घोर आश्चर्य में पड़ जाते। पुराने ऐंठे-अकड़े आसमान से बातें करने वाले वनों का जड़-जगत्, कुछ ऐसा बदला कि वह जगह-जगह सुन्दर रंगों और अजीब तरह के अनदेखे, अनसुने फलों, और पेचीदा ढंग से गढ़े गये बीज-खोलों से भर उठा, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इन बीजों से अत्यन्त पोषक खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति हुई जो कि धरती पर पहले कभी नहीं थे, या जिन पदार्थों की मछली खाने वाले, पत्ते चबाने वाले डाइनोसारों के युग मे कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

इस प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ तीन स्रोतों से प्राप्त होते थे जो सबके सब पुष्पधारी पौधों से पैदा होते थे। इनमें विद्यमान लुभावने मकरन्द और पराग का उद्देश्य फूलों के संसेचन के लिए कीड़ों को आकर्षित करना था और इसी कारण उस अद्भुत रंग-बिरंगे जीव की उत्पत्ति हुई जिसे मर्मर पक्षी (Humming bird) कहते हैं। दूसरा साधन रसभरे फल थे जो बड़े जन्तुओं को आकर्षित करने के लिए बनाये गये थे और जिनके अन्दर सख्त खोल में बन्द, बीज छुपा रहता था जैसे कि टमाटर में। और इसके अलावा, जैसे यह सब-कुछ पर्याप्त नहीं था, स्वयं बीज था जिसके अन्दर शिशु-पौधे के पोषण के लिए खाना रखा गया था। संसार के कोने-कोने में पुष्पधारी पौधों के ये अविश्वसनीय रूप भाड़ में फूटते हुए चनों की तरह प्रस्फुटित होते रहे।

भूविज्ञान के आधार पर कह सकते हैं कि एक ही हमले में आवृत बीजों ने सारी दुनिया पर अधिकार कर लिया। निरावरण धरती को घास ने वस्त्र पहनाने शुरू कर दिये। आधुनिक युग तक पहुँचते-पहुँचते घास की छः हजार

से अधिक जातियाँ पैदा हो गईं। नये वृक्षों के नीचे, हर प्रकार की झाड़ियाँ और बेलें अपने उड़ने वाले बीजों के साथ, रेंगती-लिपटती उग आईं।

इस विस्फोट का असर जीवों के जीवन पर भी पड़ा। अनजाने ही फूलों का संसेचन करने और भोजन के साधनों का उपयोग करने के लिए विशेष प्रकार के कीड़ों के दल पैदा होने लगे। फूल खिलने लगे। बड़े और बड़े फूल अपनी अद्भुत गरिमापूर्ण शोभा के साथ, अनेक विभिन्नताओं को लिये खिलते चले गये। कुछ सुरमई रंग के अस्वाभाविक से फूल रात में खिलते, जिनका उद्देश्य साँझ के धुँधलके में पतंगों को आकर्षित करना था। कुछ आर्किड की जातियों ने मादा मकड़ी का सा आकार ग्रहण कर लिया ताकि भटकती हुई नर-मकड़ी को आकर्षित कर सके। कुछ आग की लपट जैसे दोपहर की धूप में चमकते हुए चरागाह की घासों के बीच हौले-हौले टिमटिमाते। पेचीदा गठन वाले कुछ फूलों के परागकण मर्मर पक्षी की छाती पर या उन काले-काले भँवरों और मधु-मक्खियों के बदन पर लिपट जाते जो फूल-फूल पर शहद इकट्ठा करते घूमते हैं। मधु बहता गया और कीड़ों-पतंगों की संख्या बढ़ती गई। यहाँ तक कि उस प्राचीन दाँतों वाली छिपकली-जैसी चिड़ियों के वंशजों का भी रूप अजीब तरह से बदल गया। काटने वाले दाँतों की जगह अब उनकी चोंचें थीं जिनसे वे बीजों को चुगतीं और कीड़ों को चट कर जातीं जो एक तरह से मकरन्द के ही दूसरे रूप थे।

ग्रह के ऊपर घासों के मैदान फैलने लगे थे। फूलों के आरम्भिक युग में उसी युग के अंग-रूप में ही महाद्वीपों ने धीरे-धीरे जो कुछ ऊपर की ओर फेंकना शुरू किया था (वनस्पति आदि के रूप में), उसके कारण पृथ्वी का जलवायु शीतल हो गया था। विशाल सरीसृप और चमड़े के पंखों वाले, तटवर्ती चट्टानों के शैतान गायब हो गये थे। अब वायुमंडल में गरम खून वाले, तेज गति की जीवन क्रियाओं के यन्त्र केवल पक्षी ही मँडराया करते थे।

स्तनपायी भी जीवित बचे रह गये थे और अब वे नये क्षेत्रों में आने का साहस करने लगे थे, पर इधर-उधर देखते हुए, वे शायद अपने अचानक महत्त्वपूर्ण हो जाने के कारण कुछ चकित से थे, क्योंकि अब वे बड़े-बड़े सरीसृप, वे विशाल छिपकलियाँ चल बसी थीं। इन स्तनपायियों में से ज्यादातर जीवों ने जंगलों के अन्दर पेड़ों पर कोंपलें खा-खाकर जीवन की शुरुआत की थी लेकिन अब वे धूप से झिलमिलाती घास के मैदानों की दुनिया की ओर आ रहे थे। घास में बहुत ज्यादा मात्रा में सिलिका होता है, इसलिए उसे चबाने के लिए अच्छे, नये और मजबूत दाँतों की जरूरत होती है, पर घास के साथ ही बीज भी खा लिये जाते थे, वे पुष्टिकारक थे। गरम खून वाले जीवों

के लिए एक नई दुनिया के द्वार खुल गये थे। भीमगज (Mammoth) घोडे और अर्ने-भैंसे जैसे बडे-बड़े घास खाने वाले जीव पैदा हो गये थे। इन जानवरो के आस-पास चोरी-छुपे रहने वाले खूँख्वार मांसभक्षी जानवर, जैसे कि लुप्त जाति के कुछ भेड़िये और तलवार के से दाँतों वाले व्याघ्र, भी पैदा हो गये थे।

यद्यपि ये जानवर मांस-भक्षी थे, फिर भी वे उसी घास से जीवित थे, यानी उससे बने हुए एक कदम आगे की चीज से, घास खाने वाले जानवरो के गोश्त से। दिन की भयानक गरमी और पाले भरी रातों में भी वे अपनी जिस भयकर शक्ति का स्तर ऊँचा बना कर रख पा रहे थे उसका कारण पुष्पधारी पौधों की संकेन्द्रित शक्ति था। अनाज की कुछ जातियों की घास के वजन की तीस प्रतिशत से भी अधिक वह शक्ति, पौष्टिक प्रोटीन और चर्बी के रूप मे जानवरों के विशाल झुण्डों में जमा थी—जो घास के मैदानों में विचरण करते थे।

जंगल के किनारे पर एक पुराने ढंग का सा जानवर अभी भी बाहर आने मे हिचकिचा रहा था। उसका शरीर पेड़ों पर रहने वाले जीवों का था। मनुष्यो के दृष्टिकोण से तो वह मजबूत और गठीला था, लेकिन जिस दुनिया में उसकी दृष्टि जमा थी, उसके दृष्टिकोण से वह एक कमजोर जानवर था। उसके दाँत, उस असावधान चिड़िया को, जिसे वह अपने पकड़ मे समर्थ हाथों से लपक लेता था, या कड़े फलों को चबाने के लिए तो काफी मजबूत थे लेकिन उनमें शेर-बाघों की तरह चीरने-फाड़ने की सामर्थ्य नहीं थी। उसमें अपनी चंचल, घुमक्कड़ और कौतूहल की प्रवृत्ति के कारण पिछले पैरों पर खड़े होकर इधर-उधर टोह लेने की इच्छा थी। वह शायद अपने पिछले पैरों पर, थोड़ा अकडे-अकड़े, कुछ-कुछ अनिश्चय के साथ दौड़ता। लेकिन ऐसा वह उन दुर्लभ क्षणो मे ही करता था, जब वह जमीन पर उतर आता। यह सब कुछ उसे पेड़ पर रहने के कारण विरासत में मिला था। उसके हाथो में लचीली उँगलियाँ थी, परन्तु जमीन पर तीव्र गति से भागने-दौड़ने के लिए उसके खुर नहीं थे।

यदि उसके दिमाग में इस नई दुनिया की प्रतियोगिता में हिस्सा लेने का विचार था तो उसके लिए यही अच्छा होता कि वह उसे भूल जाता। दाँत या खुर, दोनों में से किसी को भी पा सकने का समय अब उसके पास नहीं रहा था। वह उनमें से था जो कभी कुछ अच्छी तरह नहीं कर पाते, वह दो दुनियाओ के बीच का त्रिशंकु था। प्रकृति ने उसके साथ पूरा न्याय नहीं किया था। ऐसा लगता था जैसे प्रकृति को कुछ हिचकिचाहट है और वह तय नही कर पायी कि उसे क्या बनाना है, कैसा बनाना है। शायद इसी कारण उसकी आँखों में कुटिल

चमक थी—ऐसी चमक जो किसी बहिष्कृत की आँखों में होती है, ऐसे जाति-बहिष्कृत की, जो यह जानता है कि उसके लिए कुछ नहीं बचा है और जो कुछ भी उसके हाथ आएगा वह उसी पर अधिकार कर लेगा। एक दिन इन अजीब वनमानुषों का एक छोटा-सा दल, खुले घास के मैदानों में लड़खड़ाता हुआ आ पहुँचा, और इसके साथ ही मनुष्य की कहानी शुरू हो गई।

प्रकृति के अचिंतनीय विवेक की बदौलत वनमानुष ही मनुष्य बनने वाले थे, क्योंकि फूलों ने फल और बीज इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न कर दिये थे कि एकदम नया और बिल्कुल भिन्न प्रकार का शक्ति-भंडार संकेन्द्रित रूप में उपलब्ध हो गया था। मंद बुद्धि वाले भीमसरटों (*Dinosaurs*) की हल्की चाल प्रभावशाली तो थी लेकिन उनके युग में जीवन की ऐसी विभिन्नता लेश-मात्र भी नहीं थी जैसी कि अब इस युग में, हमारे ग्रह के ऊपर, इधर-उधर, पेड़ों के और वनस्पति के बीच झलकने लगी थी। नीचे की ओर, एक जलधारा के पास वनमानुषों में से एक ने, अपने हाथ की कुतूहली उँगलियों से एक पत्थर को छुआ, और एक अनजाने अस्पष्ट विचार से प्रेरित हो उसे मोटे तौर पर जाँचा। फिर उनका सारा दल एक अजीब तरह से गले के भीतर खँखारने की-सी आवाज़ में चिल्लाया और लम्बी घासों के बीच बीजों और कीड़ों को खोजता-खाता आगे बढ़ने लगा। उनमें से, उस एक वनमानुष ने अभी भी उस पत्थर को पकड़ रखा था और रह-रह कर उसे जाँचता और सूँघता था। अब जन्तु-जगत् पर आक्रमण होने ही वाला था।

यदि कोई उस प्रथम मानव-दल की दस लाख वर्षों की कहानी को तीव्र गति वाले एक चलचित्र के रूप में दिखा सकता तो उस अजीब हाथ के उस पत्थर को आग पैदा करने वाले चकमक पत्थर और मशाल में बदलते देखा जा सकता था। भीड़-भाड़ भरे घास के मैदानों की वह दुनिया—जहाँ विशालकाय अर्ने भैंसे और चिंघाड़ते भीमगज विचरते-घूमते थे—एक ऐसे मांस-भक्षी जन्तु की अतृप्त बढ़ती संख्या की क्षुधापूर्ति के लिए विनाश के गर्त में समाती दिखाई देती थी जो कि अपने समय के व्याघ्रों की भाँति घास ही से अप्रत्यक्ष रूप से शक्ति प्राप्त कर रहा था। बाद में उसने आग खोज निकाली, जिसकी मदद से उसने कड़े मांस को अधिक मुलायम बना कर उसकी शक्ति को और भी अधिक तेजी से अपने उदर में खींचना शुरू किया, पर हिंस्र रूप धारण कर के मनुष्य ने जो आदतें पकड़ ली थीं, उसका पेट इसका आदी नहीं था।

उसके हाथ-पैर लम्बे हो गये, अब वह घास के मैदानों में कुछ उद्देश्य ले कर लम्बे डग भरने लगा था। प्रच्छन्न रूप से प्राप्त वह शक्ति, जिसके सहारे मनुष्य को महाद्वीपों की खाक छाननी थी, अन्ततः अपर्याप्त सिद्ध होने वाली

थी । हिमयुग के प्राणियों के विशाल झुण्डों का लुप्त हो जाना निश्चितप्राय था । जब उन्होंने ऐसा किया तो वर्षों पहले जलधारा के निकट पत्थर पकड़ने वाले हाथ की तरह, एक और हाथ मुट्ठी-भर घास के बीजों को तोड़ कर गम्भीरता से विचार करने वाला था ।

मनुष्य की सुनहरी मीनारें, उसके उमड़ते हुए समुदाय, उसकी मशीनों के घूमते हुए पहिये, उसके पुस्तकालयों में संचित अपार ज्ञान, उस एक क्षण में गेहूँ के उस पूर्व रूप में, माटी-सने उन हाथों में रखे बीजों में, हौले-हौले जम गये होंगे । फूलों और उनके फलों की अगणित विभिन्नताओं के वरदान बिना, मनुष्य और पक्षी यदि किसी प्रकार आज तक बच भी गये होते तो आज उन्हें पहचानना असम्भव होता । छिपकली-नुमा उरग-पक्षी (Archaeopteryx) शायद अभी भी भीमवृक्षों की शाखों पर कीड़े खाते होते, मनुष्य शायद अभी भी कहीं अँधेरे में नदी-जल की मछली को चबाने वाला कीट-भक्षी निशाचर होता । परन्तु एक पंखुड़ी के प्रभाव ने इस दुनिया के रूप-रंग को बदल दिया और सजा-सँवार कर हमें सौंप दिया ।

६. पिल्टडाउन का वास्तविक रहस्य

मनुष्य को अपना मस्तिष्क कैसे प्राप्त हुआ? कई वर्ष पहले डार्विन के समकालीन विद्वान् और उनके साथ, संयुक्त रूप से 'प्राकृतिक चुनाव' (Natural selection) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले, एल्फ्रेड रसेल वालेस ने, यह साधारण प्रश्न उठाया था। तब से अब तक इस प्रश्न से सभी विकासवादी परेशान रहे हैं। जब इस विषय पर वालेस द्वारा लिखे निबन्ध की प्रतिलिपि डार्विन को प्राप्त हुई तो उसे पढ़कर वे स्तब्ध-से रह गये। ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उन्होंने क्षुब्ध होकर उस निबन्ध के आर-पार 'नहीं' लिख दिया और जब इस विरोध का आवेश और बढ़ गया तो इस 'नहीं' शब्द को तीन मोटी लाइनों से रेखांकित कर दिया।

डार्विन, वालेस द्वारा पूछे गये जिस प्रश्न का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके थे, वही प्रश्न फिर हमारा पीछा करने आ पहुँचा है। मानव-विकास के बारे में डार्विन की कही हुई बातों को पुष्ट करने के लिए, लम्बे समय तक जिस महत्त्वपूर्ण खोपड़ी को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जाता था और जो बहुत ही प्राचीन समझी जाती थी, वह जाली सिद्ध हो चुकी है। यह भांगा-पट्टी किसी अविवेकी परन्तु इस क्षेत्र के शौकीन वैज्ञानिक ने दी थी। ससेक्स-डाउन्स नामक स्थान में सन् १९११ में पाई गई इस पिल्टडाउन-खोपड़ी को सम्पूर्ण वैज्ञानिक-जगत्, इसके पाये जाने के दिन से ही जानता था. सन् १९५३ मे दुनिया भर के अखबारों ने इसे 'मानव-विज्ञान के पंडितों को बन्दर बना देने वाली खोपड़ी' कहकर इसका उपहास किया था। १९५३ में किसी को भी यह बात याद नहीं रही कि, महान् विकासवादी वालेस ने सन् १९१३ में, इस

खोपड़ी के बारे में अपने एक मित्र को लिखा था कि "पिल्टडाउन-खोपड़ी से यदि कुछ पता चलता है तो यही कि इससे कुछ बात सिद्ध नहीं होती।"

वालेस ने यह बात क्यों कही ? अपने समय के सभी अंग्रेज वैज्ञानिकों मे केवल उन्होंने ही, लगभग अकेले, क्यों उस फॉसिल के नमूने को सन्देह की दृष्टि से देखना पसन्द किया जबकि उससे, वह सिद्धान्त काफी हद तक सही साबित होता नजर आता था, जिसके लिए उन्होंने और डार्विन ने अपना सारा जीवन खपा दिया था ? ऐसा करने का एक कारण था, पिल्टडाउन खोपड़ी मानव मस्तिष्क की जिस विकास-प्रक्रिया के रहस्य को प्रकट करती प्रतीत होती थी, उस पर वालेस विश्वास नहीं करते थे। वे ऐसी खोपड़ी पर विश्वास नहीं करते थे जिसका मस्तिष्क-कोष्ठ आधुनिक मनुष्य का सा हो और वह आदियुगीन चेहरे वाले शरीर में रखा हो, इसके अलावा, जिसके बारे में यह आरम्भिक अनुमान लगाया गया हो, कि वह खोपड़ी कोई दस लाख वर्ष से भी अधिक पुरानी है।

आज हम इस बात को जानते हैं कि मनुष्य की प्रमाणित पुरातन-अवशेषों की बढ़ती हुई सूची में से पिल्टडाउन खोपड़ी को हटा देने से, वैज्ञानिकों द्वारा विकास के सिद्धान्तों की स्वीकृति पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। यह सच है कि मानव-फॉसिलों की विशेषताओं का स्पष्ट ज्ञान होने और उनकी प्राचीनता निश्चित करने की सही विधि का ज्ञान होने से पूर्व की परिस्थितियों मे, पिल्टडाउन की खोज होने के कारण ही यह असाधारण जालसाजी इतने लम्बे अर्से तक सम्भव बनी रही। परन्तु अन्ततः ये समाचार-पत्र ही थे जो जालसाजी के चतुराईपूर्ण वैज्ञानिक ढंग की खोज के समाचारों में इतने खो गये कि पिल्टडाउन का वास्तविक रहस्य जानने से वंचित रह गये। अद्वितीय और कान्तदर्शी मस्तिष्क वाले मानव के विकास में डार्विन को उन प्राकृतिक शक्तियों का उद्देश्यहीन खिलवाड़ दिखायी दिया जिन्होंने वनस्पति और जीवों के शेष प्राणि-जगत् की सृष्टि की थी। इसके विपरीत वालेस ने मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण की पूर्णतया उपेक्षा कर दी और इसके स्थान पर किसी दिव्य शक्ति की इच्छानुसार नियंत्रित विकास-प्रक्रिया के सिद्धान्त का समर्थन किया। इस मामले को इन दोनों व्यक्तियों के विचारों की तुलना से ही स्पष्ट किया जा सकता है।

जिस किसी ने भी विकासवाद का अध्ययन किया है वह इस बात को जानता है कि डार्विन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, क्योंकि पौधों और जीवों की सन्तानोत्पत्ति की शक्ति उपलब्ध खाद्य-सामग्री की तुलना में कहीं अधिक तेज रफ्तार से चलती है, इसलिए प्रकृति में सभी जीवित वस्तुओं

के बीच, अपने अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष चल रहा है। और चूँकि जानवरों में व्यक्तिगत विभिन्नता होती है, इसलिए उनमें से जो परिस्थितियों के सर्वाधिक अनुकूल होते हैं वही जीवित बचे रहते हैं और अपनी सन्तानों को आगे बढ़ा पाते हैं और उनकी ये सन्तानें अपने पूर्वजों के आनुवंशिक रूप-गुण प्राप्त करके क्रमानुसार उनमें वृद्धि करती हैं। जीवन का यह संघर्ष अनवरत रूप से चलता रहता है और इस अनवरत प्रक्रिया से जीवों में धीरे-धीरे असीम शारीरिक परिवर्त्तन होते रहते हैं, क्योंकि जीवित प्राणियों को विभिन्न प्राकृतिक वातावरणों में रहना पड़ता है, विभिन्न प्रकार के शत्रुओं का सामना करना पड़ता है और उन सभी परिवर्त्तनों से निपटना पड़ता है जिनके विरुद्ध युग-युगान्तरों में जीवन को संघर्ष करना पड़ा है।

डार्विन के सिद्धान्त में केवल एक दोष रह गया। उन्होंने तर्क पेश किया है कि "इसके अनुसार प्रत्येक संगठित प्राणी अपने प्रदेश के अन्य निवासी प्राणियों के बराबर या उनसे कुछ ही अधिक पूर्ण हो पाता है।" इससे कोई प्राणी शत-प्रतिशत पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता, उसे केवल सापेक्षिक श्रेष्ठता ही प्राप्त हो सकती है, नहीं तो प्राकृतिक चुनाव और अस्तित्व के लिए होने वाली संघर्ष-प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव द्वारा होने वाले मंद परिवर्त्तनों के माध्यम से मनुष्य के विकास का स्पष्टीकरण करने के लिए डार्विन को यह मानने की जरूरत पड़ी कि मनुष्य का मनुष्य के साथ और कबीलों का कबीलों के साथ एक दीर्घकालीन संघर्ष चला।

उन्हें यह कल्पना इसलिए करनी पड़ी क्योंकि मनुष्य अपने साथ के अन्य जन्तुओं की तुलना में बहुत अधिक विकसित प्राणी है। चूँकि विकास-प्रक्रिया सम्बन्धी डार्विन का सिद्धान्त, जीवन-संघर्ष के लिए आवश्यक सभी शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के व्यावहारिक गुण-दोषों पर निर्भर है, इसलिए यदि यह न कहा जाय कि मनुष्य का मनुष्य के साथ मानवीय संघर्ष हुआ, तो इस बात का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं रहेगा कि मनुष्य ने अपने समकालीन जिन जन्तुओं के साथ जीवित रहने की प्रतियोगिता शुरू की थी उनकी तुलना में, केवल प्राकृतिक चुनाव की सहायता से, उसने इतनी अधिक मानसिक श्रेष्ठता कैसे प्राप्त कर ली।

डार्विन के समय के अधिकतर विचारकों को यह स्पष्टीकरण तर्कसंगत प्रतीत हुआ। वह समय, उपनिवेशों के विस्तार और क्रूर व्यापारिक प्रतियोगिता का समय था। लगता था कि प्रारम्भिक संस्कृति के लोगों और उनके छोटे-छोटे समाजों के भाग्य में विनाश ही बदा है। उस समय यह सोचा जाता था कि विक्टोरियन सभ्यता मानवीय उपलब्धियों की चरम सीमा है और दूसरे

ढंग से जीवन-यापन करने वाली, दूसरे रीति-रिवाजों को मानने वाली मानव जातियाँ, प्राणिविज्ञान के अनुसार पाश्चात्य मानवों की तुलना में निम्न स्तर की होनी चाहिएं। यहाँ तक कि इन जातियों में से कुछ को वनमानुषों से थोड़ा ही बेहतर बताया जाता था। ऐसे समय में, जबकि मनुष्य के विकास को दर्शाने वाले सन्तोषजनक फॉसिल नहीं थे, डार्विनवादी अनजाने ही विकास-क्रम के मार्ग की उस विशाल खाई को कम करके आँक रहे थे जो वनमानुष और मनुष्य के बीच विद्यमान थी। मानव-जाति का विकास निम्न वर्ग से दर्शाने की चिन्ता में वे लोग, आधुनिक काल के आदिवासियों को मानव-विकास शृङ्खला की, जीवित 'लुप्त कड़ी' के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे।

ठीक इसी समय, इसके विरोध में वालेस ने अपनी एकाकी आवाज बुलन्द की। विज्ञान के इतिहास में यह एक बड़ी विचित्र घटना है क्योंकि विकास-प्रक्रिया की प्रवृत्ति के बारे में, वालेस भी डार्विन से बिलकुल स्वतन्त्र और मौलिक रूप से उन्हीं सामान्य परिणामों पर पहुँचे थे। इतना होने पर भी, डार्विन की रचना 'प्रजातियों का उद्‌गम' (Origin of Species) के प्रकाशित होने के कुछ ही वर्षों बाद वालेस के दिमाग में एक ऐसा विचार उत्पन्न हुआ जिसने डार्विन को चकित भी कर दिया और परेशान भी। वालेस को उष्ण कटिबन्ध के द्वीपसमूहों के आदिवासियों के बीच रहने का अनुभव था, अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने आदिवासियों को मानसिक रूप से छोटा मानने का विचार त्याग दिया। बल्कि वे इससे भी आगे बढ़े। उन्होंने डार्विन के मत के विरोध में यह मत प्रस्तुत किया कि जीवन-निर्वाह की दृष्टि से भोजन जुटाने के सरल उपायों के लिए जितनी मानसिक शक्ति की जरूरत होती है, आदिवासियों में वह वस्तुतः उससे कहीं अधिक होती है।

वालेस ने अपनी इस बात पर बल देते हुए कहा कि यह कैसे हुआ कि किसी प्राणी का कोई अङ्ग उसकी आवश्यकताओं से भी अधिक विकसित हो गया। प्राकृतिक चुनाव के अनुसार तो जंगल में रहने वाले एक असभ्य मनुष्य का मस्तिष्क किसी वनमानुष से थोड़ा ही अधिक उत्कृष्ट होना चाहिए था, जबकि इसके विपरीत बौद्धिक दृष्टि से वह हमारे विद्वद् समाजों के औसत सदस्य से कुछ ही उतर कर है।

जबकि लोगों में यह भ्रम फैला हुआ था कि आदिम जाति के मनुष्य सिर्फ गुर्राहट से या फिर बन्दर की तरह दाँत किटकिटा कर ही बोल सकते हैं तब ऐसे समय में वालेस ने दृढ़ता से यह विचार प्रकट किया कि आदिम जातियों के मनुष्य का मानसिक स्तर बहुत ऊँचे दर्जे का होता है। उनका कहना है कि "कई तरह की स्पष्ट और प्रांजल ध्वनियाँ निकालना और उनमें लगभग

अगणित उतार-चढ़ाव पैदा कर सकना किसी भी दृष्टि से उच्च वर्ग के लोगो से नीचे स्तर की बात नहीं मानी जा सकती है। इस तरह, इन आदिवासियो मे उनकी आवश्यकताओं के पैदा होने से पहले ही, एक उपकरण का विकास हो गया है।"

अन्त में वालेस ने मनुष्य के सम्बन्ध में डार्विन की सभी बातों को, इस बात पर जोर देकर चुनौती दी, कि कला, गणित और संगीत-सम्बन्धी योग्यताओं को, प्राकृतिक चुनाव और 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। उन्होंने तर्क उपस्थित किया कि मानव-मस्तिष्क के विकास में कोई और ही चीज, कोई अज्ञात दैवी तत्त्व, कार्यशील रहा होगा अन्यथा सरल संस्कृतियों वाले मनुष्यों में मूल रूप से वही मानसिक क्षमता क्यो है जो डार्विनवादियों के अनुसार केवल तुलनात्मक संघर्ष के कारण ही विकसित होती है।

डार्विन ने कहा था "यदि आपने मुझे न बताया होता कि ये बातें आपने कही हैं तो मैं यही सोचता कि यह किसी और ने जोड़ी होंगी। मेरा आपसे गम्भीर मतभेद है और इसका मुझे बहुत खेद है।" लेकिन डार्विन ने वालेस की शकाओं का ठीक प्रकार से समाधान नहीं किया। आदत और स्वभाव के आनुवशिक प्रभाव के बारे में कुछ अस्पष्ट बातों के अलावा, डार्विन अपनी मूल बात पर जमे रहे—स्वभाव के आनुवंशिक प्रभाव की धारणा का भी आज कोई उचित वैज्ञानिक आधार नहीं है। बाद में धीरे-धीरे वालेस की चुनौती बिसरा दी गई और वैज्ञानिक-जगत् में आत्म-तुष्टि की प्रवृत्ति हावी हो गई।

१८५९ में 'प्रजातियों का उद्गम' नामक पुस्तक के प्रकाशित होने के ७० साल तक मनुष्य की खोपड़ियों के केवल दो फॉसिल उपलब्ध थे। डार्विन-वालेस विवाद पर जो थोड़ा-सा प्रकाश पड़ सकता था, वह इन्हीं से सम्भव हो सकता था। इनमें एक, छोटे मस्तिष्क वाले जावा-वनमानुष की थी और दूसरी प्रसिद्ध पिल्टडाउन या 'उषा मानव' (Dawn man) की खोपड़ी थी। आरम्भ में यह समझा जाता था कि दोनों हिम-युग के एकदम आरम्भ-काल की हैं। यद्यपि बाद में इस काल में परिवर्तन किया गया, फिर भी एक लम्बे अर्से तक इन दोनों खोपड़ियों को बहुत प्राचीन और लगभग समकालीन माना जाता रहा।

दो विभिन्न प्रकार की 'लुप्त कड़ियों' की कल्पना कठिनाई से ही की जा सकती है। यद्यपि यह माना जाता था कि ये दोनों ही दस लाख वर्ष पुरानी है पर उनमें से एक सचमुच ही आदियुगीन और बहुत छोटे मस्तिष्क की थी, दूसरी, यानी पिल्टडाउन खोपड़ी, का चेहरा आदियुगीन मालूम होते हुए भी

उसका मस्तिष्क आश्चर्यजनक ढंग से आधुनिक था। इन दोनों रूपों में से कौन मानव-विकास की सही कहानी कहता है? क्या वह बड़ा मस्तिष्क प्राचीन था? क्या युग-युगांतर की अवधि में धीरे-धीरे बढ़ता हुआ यह मस्तिष्क डार्विन के सिद्धान्तों के अनुसार विकसित हुआ? पिल्टडाउन खोपड़ी, ऐसे ही विकास की ओर संकेत करती ज्ञात होती थी।

अनेक लोग इस बात से बहुत प्रसन्न प्रतीत होते थे कि उनकी वंशपरम्परा प्रकट रूप से अधिकाधिक भूतकाल में पहुँच गयी है। जावा-वनमानुष को देखने पर यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता था कि हमारा यह पुरखा किसी सुदूर भूतकाल का प्राणी नहीं था, उस युग मे भी उसका एक ऐसा मस्तिष्क और चेहरा था जिससे उसके वनमानुष होने का जबरदस्त अहसास होता था। लेकिन जब भूविज्ञान की साक्षियों के आधार पर इस सीधे खड़े होकर चलने वाले वनमानुष को मध्य हिमयुग का माना गया तो एकाएक इस बात की सम्भावना पैदा हो गयी कि शायद वालेस का यह सन्देह सही था कि मनुष्य के मस्तिष्क का विकास सम्भवतः बहुत आश्चर्यजनक तेजी से हुआ हो। इसके विपरीत पिल्टडाउन के इस अवशेष को देखकर ऐसा लगता था कि मनुष्य बहुत प्राचीन है और उसका विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ होगा। पिल्टडाउन की खोपड़ी की जालसाजी करने वाले ने मनुष्य की खोपड़ी में वनमानुष का जबड़ा लगाकर, शायद बिना जाने, एक ऐसे जीव की रचना कर दी जिससे मनुष्य के बारे मे, डार्विन के मत को समर्थन मिलता था और जो आज के युग के मनुष्य से बहुत भिन्न नहीं था और हिम-युग के पूर्व भी इस पृथ्वी पर वर्त्तमान था।

इन विवरणों में से कौन सही था? सन् १९५३ में पिल्टडाउन का भंडा-फोड़ होने तक इन दोनों मतों के सही होने की सम्भावना पर विचार करना पड़ता था। एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न दो फॉसिलों को गम्भीरता के साथ एक ही तराजू से तौलना पड़ता था। पर आज पिल्टडाउन खोपड़ी गायब हो गई है, उसकी जगह पर हमारे सामने दो आधुनिक वैज्ञानिक, एम० आर० ए० चान्स और ए० पी० मीड के बयान मुँह बाये खड़े हैं।

वालेस के निबन्ध पर डार्विन द्वारा जोश के साथ लिखे गये 'नहीं' के अस्सी वर्ष बाद, ये दोनों वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि "मनुष्य के मस्तिष्क मे इतना बड़ा सेरिब्रम (Cerebrum) होने का कोई उचित स्पष्टीकरण पेश नहीं किया गया है।"[1]

---

1. Symposia of the Society for Experimental Biology, VII, Evolution (New York; Academic Press, 1953), P. 395.

जन्तुओं के विभिन्न रूपों में विकास के दिखाई पड़ने वाले पहलुओं की जानकारी प्राप्त करने में, हम इतने व्यस्त रहे कि हमें, मध्यरात्रि के आकाश और झिलमिलाते अदृश्य विचार-ब्रह्माण्डों को धारण करने वाला छोटा-सा वर्तुलाकर अपना सिर प्रतिदिन की ऐसी सामान्य वस्तु प्रतीत होता रहा जैसे किसी ढलान पर उगा पीला-सा सीताफल।

इस रहस्य का एक भाग, जैसा आज के मानवविज्ञान-विशारदों का विचार है, मस्तिष्क और काल का पारस्परिक सम्बन्ध है। वालेस ने कहा था. "यदि एशिया और यूरोप के सभी भागों में किये गये अनुसंधान स्तनपायी-युग में मनुष्य की उपस्थिति के बारे में कोई प्रमाण प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं तो इस दिशा में कम-से-कम, एक संभावना के रूप में यह माना जा सकता है कि मनुष्य का जन्म बहुत बाद में हुआ और उसका विकास बहुत तीव्र गति से हुआ।" यदि यह सिद्ध हो जाये कि मानव-विकास अन्य जीवों की तुलना में बहुत तेजी से, दूसरे शब्दों में, लगभग एक 'विस्फोट' की तरह हुआ हो तो वालेस के विचार में उनकी बात प्रतिपादित हो जाती, क्योंकि उनके विचार से मस्तिष्क के इतनी तेजी से विकसित होने का यह अर्थ हुआ कि मनुष्य की रचना में कोई दैवी शक्ति कर्मशील है। सन् १८७० में जब वालेस ने यह लिखा था, तब मानव के पूर्व-इतिहास की जानकारी एक तरह से लगभग शून्य के बराबर थी। आज हम वालेस की शंका का आंशिक रूप से उत्तर दे सकते हैं। पिल्टडाउन की जालसाजी का पता लगने के बाद जो प्रमाण हमारे पास रह गये हैं और उनकी संख्या कम नहीं है, वे सब इस बात का संकेत करते हैं कि पृथ्वी के अरबों-खरबों उमड़ते प्राणियों में से सबसे नवीन और कच्ची उम्र का एक प्राणी अपने वर्तमान रूप में मनुष्य भी है।

हिम-युग, हमारे काल से, अधिक-से-अधिक दस लाख साल पहले रहा होगा। जो लोग मनुष्य के केवल लिखित इतिहास से परिचित हैं उन्हें यह अवधि बहुत लम्बी मालूम पड़ेगी, लेकिन जिस रूप में विकास-क्रम का विद्यार्थी समय की नाप-जोख करता है, उस हिसाब से यह वास्तव में बहुत छोटी अवधि है। इस काल की विशेषता इस बात में अधिक है कि इस अवधि में जीवन के नये रूपों के पैदा होने के बजाय, कुछ अन्तिम और विशाल थलचर जीवों, जैसे कि बालों वाले विशालकाय भीमगज और कटार के से दाँतों वाले व्याघ्रों का लोप हुआ। लेकिन प्रकट रूप से इसका एक ही अपवाद है और वह है मनुष्य का उद्भव और पुरानी दुनिया के महाद्वीपों में उसका विस्तार।

पिल्टडाउन खोपड़ी के विचारक्षेत्र से हट जाने के बाद, मनुष्य के बारे में यहाँ तक कि उसके भारी चेहरे और गुबरैल-सी भौंहों वाली स्थिति के बारे

में भी हमारा अधिकतर ज्ञान, हिमयुग के उत्तरार्द्ध तक सीमित है। यदि हम इससे पीछे के, भूतकाल की ओर जायें तो कुछ भद्दे औजार और पत्थर के उपकरणों के चिह्न हम पा सकते है, जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि हिमयुग के पूर्वार्द्ध में यूरोप, एशिया और विशेष रूप से अफ्रीका में मनुष्य का कोई आरम्भिक रूप वर्त्तमान था। लेकिन वैज्ञानिकों के लिए इस तरह से सोचना, किसी अज्ञात भूखण्ड के ऊपर छायी धुन्ध में से झाँकना होगा जिसमे कहीं, इधर-उधर चक्राकार नाचते वाष्पों के बीच किसी लड़खड़ाती आकृति की झलक मिलती है या अर्ध-जंगली आदिम चेहरे, क्षण भर को खुले उस कोहरे के किसी छिद्र से घूरते दिखाई देते हैं। तब जैसे ही कोई किसी सूत्र को पकड़ता है तो घने कोहरे के लम्बे आवरण का धुँधकाल छा जाता है, भूत-प्रेत गायब हो जाते हैं और वे अब-सुनी आवाजें शून्य में विलीन हो जाती है।

यह सब कुछ होते हुए भी, खास तौर से अफ्रीका में मनुष्यों से मिलते-जुलते वनमानुषों के एक महत्त्वपूर्ण दल का पता चला है। इन जीवों के मस्तिष्क छोटे और दाँत बहुत हद तक मनुष्यों के से हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अभी भी इस बात पर विवाद कर रहे हैं कि वे मानव जाति की सीधी वंशपरम्परा के जीव हैं या केवल हमारे कोई निकट-सम्बन्धी। यह अब स्पष्ट है कि इनमे से कुछ समय-गणना की दृष्टि से इतने बाद के है कि हमारे असली पुरखे हो ही नहीं सकते. वैसे इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम उनकी शारीरिक विशेषताओं से शायद उन वनमानुषों के रूप-आकार का पता न लगा सके, जो आगे चल कर मनुष्य रूप में परिवर्तित हुए।

ये सभी वनमानुष अपनी आकृति और प्रकार में एक-जैसे नही हैं। ये कुछ हद तक मनुष्य हैं तो कुछ हद तक मनुष्य नही भी हैं। कुछ के शरीर कमजोर हैं, कुछ के हड्डियाँ तक तोड़ सकने वाले बड़े-बड़े जबड़े हैं तथा उनकी खोपड़ी पर गुरिल्लाओं की तरह की भारी उभरी हुई हड्डियाँ है। इस तथ्य से हम वालेस की एक अन्य, वर्षों पहले प्रस्तुत की गयी सूझ पर पहुँचते हैं। वालेस ने यह बात देखी थी कि वास्तविक मानव-मस्तिष्क के विकास के साथ, मनुष्य ने अपने अंगों में परिवर्तन की जरूरतें अपने औजारों और अपनी मशीनों से पूरी करनी आरम्भ कर दीं। अन्य जन्तुओं में आवश्यकतानुसार इस प्रकार के आंगिक परिवर्तन केवल शरीर के विकास से ही कई युगों के अन्तर पर हो सकते हैं। जानवरों में प्राकृतिक चुनाव के जरिये युगों बाद जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं, मनुष्य ने विकास का वह काम अनजाने ही अपनी मशीनों को सौंप दिया है। इस युग में जो परमाणु-शक्ति का संचालन करने वाला है, आवाज की रफ्तार से भी तेज उड़ने वाला हवाबाज है, उस आज के

मानव का मस्तिष्क और शरीर ठीक वैसा ही है जैसा बीस हजार वर्ष पूर्व उसके उस पूर्वपुरुष का था, जिसने फ्रांस मे, गुफाओं की दीवारों पर अन्तिम हिमयुग के भीमगजों के चित्र बनाये थे।

इसी बात को यदि दूसरे ढंग से कहें तो यों कहेंगे कि ये मनुष्य के विचार थे जिनमें विकास हुआ और विचारों ने विकसित होकर, उसके आसपास की दुनिया को बदल डाला। वर्त्तमान समय में मनुष्य के सामने खुले अन्तरिक्ष के घातक विकिरण की, उसकी अपनी मशीनों की कल्पनातीत गति की समस्या है। उसे इस प्रकार के इलैक्ट्रोनिक नियंत्रण-यंत्र बनाने हैं जो उसकी तंत्रिकाओं (Nerves) से भी अधिक तीव्र गति से काम कर सकें। और उसे अपने नग्न शरीर को, परमाणु-विकिरण से बचाने के लिए सुरक्षात्मक धातुओं से ढकना है। शारीरिक दृष्टिकोण से वह उस यान्त्रिक दुनिया के सामने बिल्कुल पुराना पड़ गया है जो उसने स्वयं बनाई है। और अब तक जिस वस्तु के सहारे वह खड़ा है, वह है धूसर द्रव्य (Gray matter) का वह छोटा-सा गोलक जिसमें ब्रह्मांड के बारे मे सदा परिवर्तित होते उसके विचारों की रूपरेखाएं घूमती रहती है।

लगभग सौ वर्ष पहले जिस समय वालेस ने मनुष्य के इस काल-विहीन तत्त्व की झलक पाई थी, उसी समय उसने एक और भविष्यवाणी भी की थी। उन्होंने कहा था, "जब हम अपने भूतकालीन इतिहा[illegible] का पता लगाते हुए पीछे की ओर जायेंगे तो कभी-न-कभी हम एक ऐसे समय [illegible] पहुँचेंगे जहां पर कि मानव-शरीर में अन्तर दिखाई देने लगेगा और उसका रूप अनेक प्रकार से बदला हुआ दिखाई देने लगेगा।" वालेस ने लिखा, तब हम यह बात जान पायेंगे कि हम मानव-परिवार के विकास के आरम्भिक स्थल पर पहुँच गये है। मानव-मस्तिष्क के उदय के पूर्व के धुंधले दिनों में, मनुष्य अपने शरीर को परिवर्त्तनो से बचा सकने में समर्थ नहीं रहा होगा, इसलिए उसके अवशेषों में उन सभी शक्तियों के प्रभावों के चिह्न मौजूद होंगे जिनका शेष प्राणि-जगत् पर असर पड़ता है। उसका रूप दूसरी तरह का रहा होगा। दूसरे शब्दों में जैसा कि हम जानते हैं उसका शरीर उतना ही परिवर्तन-योग्य रहा होगा जितना कि दक्षिण-अफ्रीकी मनुष्यों जैसे वनमानुषों का होता है।

आज जब पिल्टडाउन की पहेली बूझ ली गई है तब हमें मनुष्य के विकास मे लगे समय का निर्धारण डार्विन के बजाय वालेस के अनुसार करना होगा। लेकिन हमें वालेस के विचारों के रहस्यवादी पहलू पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अभी जिन बहुत-सी बातों की जाँच होनी है, मनुष्य के विकास में उनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान हो सकता है। पूर्व-हिमयुग के तेजी से

लुप्त होते हुए पुरातत्त्वीय प्रमाणों के साथ, इसके साथ ही मनुष्यता की ओर उन्मुख वनमानुषों की खोज से, जिनका मस्तिष्क वनमानुषों का है तो भी शारीरिक विशेषताओं का विन्यास विभिन्न प्रकार से हुआ है—इस बात का संकेत मिलता है कि मानव-मस्तिष्क का विकास उससे कहीं बहुत अधिक तेजी से हुआ होगा, जैसा कि शुरू-शुरू के डार्विनवादी सोचते थे। उन दिनों ध्रुव प्रदेशों में रहने वाले एस्किमो लोगों के बारे में यह सुनना सम्भव था कि वे लोग सम्भवत: लाखों वर्ष पहले के मायोसीन (Miocene) युग के बचे-खुचे मनुष्य हैं। इस विचार के विपरीत अब ऐसा लगता है कि मनुष्य का विकास बहुत कम अवधि में हुआ, लगभग एक विस्फोट की तरह। इस बात पर विश्वास करने के सभी कारण विद्यमान हैं कि मानव-मस्तिष्क के विकास में चाहे जो भी शक्तियाँ कार्यरत रही हों, यह सम्भव नहीं हुआ होगा कि सारी दुनिया में, सभी स्थानों के मनुष्यों में एक-सी मानसिक शक्तियों का विकास, अलग-अलग मानव-दलों या जातियों के बीच एक दीर्घकालीन धीमी प्रतियोगिता के कारण हुआ होगा। वह कोई और वस्तु है, कोई ऐसा तथ्य है जो वैज्ञानिकों के ध्यान में आने से रह गया है।

मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसी विचित्र विशेषताएँ हैं जिनसे यह साफ पता चलता है कि वह अपनी ही जाति के लोगों से लड़-झगड़ कर विकसित होने वाले प्राणी की अपेक्षा कुछ और है। एक अजीब कीटडिम्ब (Larval) की सी नग्नता है जिसे संघर्ष में योग्यतम के जीवित बच रहने के सिद्धान्त से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। उसका असहाय शैशव काल और बचपन की अवधि बहुत लम्बे होते हैं, उसमें सौन्दर्यबोध की अनुभूति होती है, यद्यपि व्यक्ति-व्यक्ति में इस अनुभूति की तीव्रता में भिन्नता हो सकती है, फिर भी विभिन्न मात्रा में यह सभी लोगों में पायी जाती है। मानव का स्तर प्राप्त करने के लिए उसे पूरी तरह मानव-समाज द्वारा सावधानी से दी जाने वाली शिक्षा पर निर्भर रहना पड़ता है।

जानवरों की एकाकी प्रजातियों की तरह मनुष्य अकेले विकसित नहीं हो सकता। उसमें सूक्ष्म सहज-प्रवृत्ति द्वारा व्यवहार-नियन्त्रण की शक्ति, बहुत हद तक खत्म हो गई है। जीवन की इस क्षति को पूरा करने के लिए माँ, बाप और समाज, बच्चे को सधाने, उसे प्रेरणा और प्रोत्साहन देने, और उसे सामान्य मनुष्य बनाने के कठिन कार्य में सहयोग देने के लिए लम्बे समय तक उसे प्रशिक्षित करते हैं। फिर भी कुछ व्यक्ति अपने-आपको इसके अनुकूल नहीं बना पाते और उन्हें समाज से अलग रखना पड़ता है।

अब हम मनुष्य की दुःखद परिस्थितियों के आश्चर्यों और आनंदों को समझने की स्थिति में हैं: मनुष्य पूर्णरूपेण समाज पर निर्भर है। वह स्वप्न-लोक का प्राणी है, उसने विचारों, विश्वासों, आदतों और रीति-रिवाजों के अदृश्य जगत् का निर्माण किया है, जो कि उसे निम्न वर्ग के प्राणियों की सूक्ष्म सहज-प्रवृत्ति के स्थान पर मिला है और उसे सहारा प्रदान करता है। इस स्वनिर्मित ब्रह्मांड में वह शरण लेता है, लेकिन जिस प्रकार चारों ओर के वातावरण और स्थितियों में परिवर्त्तन हो जाने के कारण निम्न वर्ग के प्राणी की सहज प्रवृत्ति असफल हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य के सांस्कृतिक विश्वास भी नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए बेकार हो सकते हैं या व्यक्तिगत स्तर पर तो किसी बड़ी उलझन में फँस कर उसके मस्तिष्क में किसी भयानक कीमियागिरी के प्रभाव से प्रेम का स्थान क्रूरता भी ले सकती है।

पशु-जगत् से छलाँग लगा कर मानव वर्ग में आने का गहरा आघात अभी भी हमारे अचेतन मस्तिष्क की गहराइयों में गूँज रहा है। यह स्थिति का एक ऐसा अन्तर था जिसमें मनुष्य को जीवित रहने के लिए बहुत ही तेजी से अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की व्यवस्था करनी पड़ी होगी. इसके साथ ही मनुष्य से एक श्रेणी नीचे के पूर्व-मानव परिवार में, दीर्घकालीन स्नेह-बन्धनों की भावना भी उत्पन्न हुई होगी, क्योंकि इस प्रकार के स्नेह-बन्धनों के बिना, उस पूर्व-मानव परिवार के नंगे-असहाय बच्चे नष्ट हो गये होते।

यह बात भी सम्भावना की परिधि से बाहर नहीं है कि मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों में जो कमी हुई, उसी की क्षतिपूर्ति के रूप में किसी प्रकार तेजी से मस्तिष्क का विकास हुआ होगा—एक ऐसी चीज का, जिसे मनुष्य को बचाये रखने के उद्देश्य से शीघ्रता से बनाना पड़ा हो। इससे यह लगता है कि मनुष्य को अपनी ही जाति के लोगों से कहीं कम संघर्ष करना पड़ा होगा, उसकी बजाय वह प्राणि-जगत् की जिन पूर्व परिस्थितियों को खो चुका था, उनके स्थान पर उसे अपने चारों ओर विचार-जगत् का निर्माण करने की भारी आवश्यकता के कारण अधिक संघर्ष करना पड़ा होगा। जैसा कि हम बाद में दर्शायेंगे, मनुष्य एक ऐसा परिपक्वावस्था का जीव है जिसमें शिशु प्रकृति स्थिर हो गयी है, एक ऐसा जीव, जिसके शैशव काल का विस्तार हो गया हो।

आधुनिक विज्ञान हमारे ज्ञान में यह वृद्धि और करता है कि मनुष्य की अनेक विशेषताएँ—जैसे कि उसके शरीर में बालों का अभाव, पतली खोपड़ी और गोलाकार सिर—उसकी विकास-गति के कुछ ऐसे रहस्यमय परिवर्तनों की ओर इशारा करते हैं, जिन्होंने मानव के प्रौढ़ होने तक उसकी भ्रूण या शैशवावस्था की विशेषताओं को सुरक्षित रखा। ये विशेषताएँ यह संकेत करती

है कि जिन शक्तियों ने मनुष्य की रचना की, उन्होंने उसे उसके क्रूर पूर्ववर्तियों के उसी बचपन से अद्भुत ढंग से दूर ला रखा। एक बार फिर वालेस के शब्द हमारा पीछा करते हुए लौट आते हैं, "हम निश्चित रूप से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि असभ्य जंगलियों में ऐसा मस्तिष्क होता है जिसे यदि सिखाया-पढ़ाया जाय तो वह उस प्रकार और श्रेणी के काम कर सकता है जो उसकी किसी भी आवश्यकता से कहीं परे होते है।"

एक आधुनिक मनुष्य के नाते, मैंने संगीत-भवनों में बैठ कर विशाल जन-समुदाय को किसी बड़े गायक की आवाज पर मुग्ध होते हुए देखा है। वहाँ अकेले, अँधेरे बॉक्स में बैठे-बैठे, जैसे किसी अन्धकारपूर्ण कुएँ की सीढियाँ चढते हुए मैंने गले के अन्दर से निकलती हुई उस अस्फुट फुसफुसाहट को, और जानवरों की सी उस गुर्राहट को सुना है जिससे उस गायक के अद्भुत स्वर का विकास हुआ है। मैं किसी पहाड़ी पर स्थित वेधशाला के कटावदार गुम्बद के नीचे बैठा आकाशगंगा के विशाल चक्र को मध्यरात्रि की इसकी सम्पूर्ण शोभा के साथ घूमते हुए देखता-देखता, इस बात पर आश्चर्य करता रहा हूँ कि मानव-मस्तिष्क तीन शताब्दियों की अवधि में अपने विचित्र स्थानहीन अन्तर में, अनन्त दूरी और बहुमुखी आयामों (Dimensions) की दुनिया को अपने बहुत ही छोटे-से अन्तस्तल में आँकने में समर्थ हो गया है।

यह भी विचित्र-सा मजाक लगता है कि विज्ञान हमें हमारे मृत पुरखों के पत्थर के औजार और उनकी टूटी खोपड़ियाँ तो दिखा सकता है लेकिन अभी यह बताने में असमर्थ है कि हम इतनी जल्दी इतनी दूर तक कैसे आ पहुँचे। और न उसके पास उस प्रश्न का ही कोई पूर्ण सन्तोषजनक उत्तर है जो वालेस ने वर्षों पहले पूछा था। जो लोग हमारे वंशवृक्ष के मूल में विद्यमान एक वन-मानुष की ओर इशारा कर हमें चिढ़ाते हैं वे उस परेशानी और विस्मय को हृदयंगम कर सकने में असमर्थ हैं जिसने आज के वैज्ञानिक को मनुष्य के एकाकी और सर्वोच्च स्थान पर आ बैठने की व्याख्या न कर सकने के कारण उलझन में डाल रखा है। जैसा कि पुरा-तंत्रिका विज्ञान (Paleoneurology) के एक महान् शिक्षार्थी डाक्टर टिली एडिन्जर ने हाल ही में कहा था, "यदि मनुष्य पिथेकेन्थ्रोपस (Pithecanthropus—एक प्रकार का पूँछहीन वानर) के रूप में होकर गुजरा है तो उसके मस्तिष्क का विकास न केवल अपनी उपलब्धियों की दृष्टि से बल्कि विकास की गति से भी अनूठा है...लगता है कि प्रमस्तिष्क गोलार्धों (Cerebral hemispheres) में ५० प्रतिशत वृद्धि हुई होगी, भूविज्ञान के दृष्टिकोण से यह वृद्धि कुछ ही क्षणों में हो गयी, परन्तु

इसके साथ शरीर की लम्बाई-चौड़ाई में किसी प्रकार की बड़ी वृद्धि नहीं हुई।

जनता ने सोचा था कि पिल्टडाउन का वास्तविक रहस्य केवल अविवेक-पूर्ण जालसाजी के रहस्योद्घाटन में ही है, परन्तु उसका वास्तविक रहस्य इस तथ्य में है कि पिल्टडाउन ने विज्ञान को इस बात के लिये बाधित कर दिया कि वह विश्व की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना, मानव मस्तिष्क का फिर अध्ययन करे।

७. गोरखधंधा

●

पिल्टडाउन के वास्तविक रहस्य के बारे में जब मैं अपने विचार व्यक्त कर चुका था तो उसके थोड़े ही समय बाद कुछ लोगों ने मुझे बुरी तरह फटकारा। इन लोगों ने मेरी बातों का यह अर्थ लगाया कि मैंने डार्विन पर छींटाकशी की है और इस प्रकार विकासवाद के सिद्धान्त की ही आलोचना की है। सौ वर्ष पुराने इस विवाद के सम्बन्ध में, लोगों में अब भी आश्चर्यजनक रूप से दबी हुई भावना शेष है। जो लोग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विशेष ध्यान नहीं देते, वे औचित्य के स्थान पर बेमतलब की बहादुरी के साथ इस प्रकार के भूले-बिसरे झगड़े में अनायास कूद सकते हैं। सामान्य लोगों के लिए प्रगतिशील विज्ञान की नवीनतम बातों के बारे में लेख लिखने वाले को कई खतरे उठाने पड़ते है और उसे बड़े विचित्र प्रकार के अनुभव होते है। कभी-कभी भाग्य उसका साथ नहीं देता जैसा कि मेरे एक परिचित के साथ हुआ। उनका पिल्टडाउन-खोपड़ी के बारे में एक संतुलित लेख उस समय प्रकाशित हुआ जबकि सभी अखबारों में पिल्टडाउन की धोखाधड़ी की धज्जियाँ उड़ाई जा रही थीं। इसके विपरीत कभी-कभी, ऐसे लेखक का भाग्य इस तरह अस्वाभाविक रूप से वरदायी सिद्ध होता है कि उसकी हिचकिचा कर कही हुई कोई बात आगे चलकर न्यूनतम प्रमाण होने पर भी अप्रत्याशित रूप से नई घटनाओं के कारण विशेष समर्थन पा जाती है।

जब 'मानव-मस्तिष्क' जैसे अत्यन्त विवादास्पद विषय पर मैं अपने विचार व्यक्त कर चुका था, तब उसके बाद दो विस्मयजनक घटनाएँ हुई। हालाँकि

बड़े-वनमानुषों के बारे में सौली जुकरमैन (Solly Zuckerman) जैसे प्रतिष्ठित विशेषज्ञ ने भी "यद्यपि प्राइमेट वर्ग के प्राणियों और मनुष्य की मानसिक शक्ति के बीच विद्यमान बड़े अन्तर" की चर्चा की है, फिर भी मैं अपनी बात खुले तौर पर जोर देकर कहता हूँ। मानव-मस्तिष्क के बारे में मेरे विचार व्यक्त करने के बाद जो दो घटनाएँ हुईं, उनमें से पहली को मैं इस पुस्तक के इसी अध्याय में प्रस्तुत करने जा रहा हूँ। दूसरी घटना को, जो कथावस्तु का उपसंहार भी है, मैं अगले अध्याय में प्रस्तुत करूँगा। समाचार-पत्रों में पहली घटना का जिस प्रकार वर्णन किया गया, उससे लगता है कि पिल्टडाउन के प्रसंग में मैंने जो निष्कर्ष निकाले थे कि मानव का विकास अपेक्षाकृत हाल में हुआ है, वह बिल्कुल गलत है।

पाठकों को याद होगा कि मार्च, १९५६ में, समाचार-पत्रों में कौतूहल-जनक और चौंकाने वाली मोटी सुर्खियाँ छपनी शुरू हुईं। शुरू-शुरू के जोश में साधारण आदमी को लगा होगा कि विकासवाद का सम्पूर्ण सिद्धान्त गलत साबित होने वाला है। समाचार-पत्रों में एक करोड़ वर्ष पुराने मानव के अस्थि-अवशेष (Fossil) की चर्चा थी। सरसरी तौर पर, देखने में ऐसा लगता था कि इस प्रकार की खोज उन सब बातों के विरुद्ध जाती है जो मैंने मनुष्य के महान् यौवन के बारे में कही है, अर्थात् मनुष्य के बारे में, जो संस्कृति का वाहक है और जिसमें भाषण की क्षमता है।

स्विट्जरलैंड से एक पुरा-जीव-विज्ञानविशारद के न्यूयार्क-आगमन पर यह शोर-गुल समाप्त हुआ। ये पुरा-जीव-विज्ञानविशारद अपने साथ प्राइमेट वर्ग के एक छोटे से प्राणी की हड्डियाँ लाये थे जिसे वैज्ञानिक-जगत् में एक लम्बे अर्से से ओरिओपिथेकस (Oreopithecus) के नाम से जाना जाता था। बेसेल के जोहानेस हर्ज़लर (Johannes Hurzeler) ने मानव-विज्ञान-अनुसंधान की वेन्नर-ग्रेन (Wenner-Gren) संस्था में एकत्र विद्वानों के एक दल को ये हड्डियाँ अपने इस विचार के साथ भेंट कीं, कि ओरिओपिथेकस की हड्डियों से यह पता चलता है कि यह जीव वनमानुषों की तुलना में मनुष्य के अधिक निकट है। चूँकि इन हड्डियों के बारे में अनुमान है कि सर्वप्रथम प्राप्त मनुष्य के फॉसिल से भी ये एक करोड़ वर्ष पुरानी हैं, इसलिए हर्ज़लर की घोषणा, अखबारों की मुख्य खबर बन गई।

न्यूयार्क टाइम्स ने समाचार दिया "पुरातन अस्थि-अवशेषों की खोज के कारण डार्विन के विकासवाद को चुनौती।" हैराल्ड ट्रिब्यून के सम्पादकीय का शीर्षक था, "लुप्त कड़ी नदारद!" मनुष्य के फॉसिल-विशेषज्ञों के पास संवाददाताओं ने लगातार फोन खड़खड़ाने शुरू कर दिये और साथ ही विकासवाद

के बहुत से विरोधियों ने भी हौले-हौले खिल्ली-सी उड़ाते हुए प्रश्न पूछने शुरू कर दिये, पिल्टडाउन की धोखाधड़ी का पता लगने के बाद से इनका उत्साह यों ही बाढ़ पर था। अब उन्हें लगा कि इस नये अन्तर्विरोध के उठ खड़े होने से हो सकता है कि 'मानव-बन्दर' का लोप हो जाय और उसके साथ ही शायद मानव-विज्ञानविदों का भी बिस्तर गोल हो जाय।

जब तक, इस विषय पर वैज्ञानिकों ने बोलना शुरू किया तब तक समाचारपत्र, जनता के दिमाग में एक ऐसे नन्हे-मानव की एक धुंधली तस्वीर छोड़ दूसरे कामों में लग गये, जो उनके कथनानुसार 'टस्कानी' की एक कोयला खान में पाया गया था। इस प्रकार की अधिकांश कथाओं की तरह 'ओरिओ-पिथेकस' का भी एक इतिहास है और इस सम्बन्ध में जो युक्ति दी जाती रही है उसकी सामान्य प्रवृत्ति वही है जैसी कि उन एक-जैसे दो विवादों की, जो जीवित मनुष्यों की स्मृति में झगड़े का कारण रहे हैं।

इस घटना के कारण मानवविज्ञानविदों के बीच बहुत लम्बे अर्से से चले आ रहे उस वादविवाद की ओर लोगों का ध्यान गया जो कभी-कभी कटुता की सीमा तक पहुंच जाता था। इस विवाद में हिस्सा लेने वाले मूलतः दो पक्षों में बँटे हुए थे : एक पक्ष था 'नन्हे मानव' के समर्थकों का, और दूसरा 'वन-मानुष-जैसे मनुष्य' के समर्थकों का। पहले पक्ष के लोग मनुष्य के वर्तमान रूप को भूतकाल की ओर, खोजते-खोजते एक ऐसे स्थल तक पहुँच जाते हैं जहाँ पर मनुष्य का आकार एक बड़े सिर वाले बौने की-सी छाया बन जाता है। दूसरे पक्ष के लोग, हमारे प्रारम्भिक पुरखे को रोशनी की ओर लड़खड़ाते, एक भद्दे वनमानुष के रूप में देखते हैं। इस झगड़े से, बहुत प्राचीन समय से चले आ रहे एक अन्य विवाद की याद आती है। यह विवाद, मानव के पूर्वनिश्चित रूप पर विश्वास करनेवालों प्रागघटनावादियों (Preformationists) और सृष्टि-क्रम के अनुसार विकसित होने वाले रूप पर यकीन करने वाले जननविकासवादियों (Epigenesists) के बीच चला आ रहा है। पूर्वनिश्चित रूप पर विश्वास करने वाले इस बात को मानते हैं कि प्रत्येक शुक्र-कोश (sperm cell) पहले से बना-बनाया मनुष्य-रूप या एक सूक्ष्म मनुष्य है जो बाद में बढ़ कर पूरा मानव बन जाता है; इसके विपरीत दूसरे पक्ष के लोग सही तौर पर इस बात यकीन करते हैं कि प्रत्येक भ्रूण, केवल विकास द्वारा ही मनुष्य-रूप को प्राप्त होता है।

कुछ मानव-विज्ञान-विशारद, मानवीय विशेषताओं, जैसे कि आगे के खड़े दाँत, छोटा चेहरा और बढ़े हुए मस्तिष्क को, मानव की दिशा में विकसित होने वाले आरम्भिक जीवों में खोजते हैं। दूसरे शब्दों में, वे लोग,

मनुष्य के पूर्वस्थिर रूप पर विश्वास करने वाले प्राग्घटनावादियों की तरह उसी तरह उसी किस्म की कोई चीज ढूढ़ते हैं। जैसा कि सेंट जार्ज जैक्सन मिवार्ट (Mivart) ने १८७४ में कहा था, "ये लोग विकास-प्रक्रिया को मनुष्य के पूर्व पुरखों में मानव-रूप से इतनी अधिक मिलती-जुलती आकृति का पता लगा कर सिद्ध कर देते हैं, मानो मनुष्य-शरीर का अस्तित्व पहले से ही रहा हो, और यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं, जिस रूप में हम उसे जानते हैं उसी रूप में वह पहले-पहल पृथ्वी पर प्रकट हुआ।"

इसके विपरीत विकासवाद का गहन अध्ययन करने वालों ने ऐसे जीव-रूपों की खोज की है जिनके बारे में समझा जाता है कि इनसे मानव-रूप के विकसित होने की सम्भावना है। यह अध्ययनशील वर्ग इस प्रकार के प्राइमेट वर्ग के जीवों से मनुष्य को अपेक्षाकृत हाल ही में विकसित हुआ मानता है और इन्हीं से आधुनिक बड़े वनमानुषों को भी विकसित हुआ मानता है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक वनमानुषों और मनुष्यों की जो तुलना की जाती है, उसके पीछे यह धारणा है कि इन दोनों प्राणियों के पुरखे एक ही थे।

इस बात पर सबसे पहले चार्ल्स डार्विन ने ही ध्यान नहीं दिया कि हमारी आकृति बन्दरों और वनमानुषों से मिलती-जुलती है, यह बात बहुत पुरातन काल से लोग जानते हैं। अट्ठारहवीं सदी में और उन्नीसवीं सदी के शुरू में, दार्शनिकों ने प्राइमेट वर्ग के जीवों को एक विभिन्न वर्गीकरण में क्रम-बद्ध रूप में रखना शुरू कर दिया था। जब बहुत से समुद्री यात्री स्थान-स्थान के आदिवासियों के सम्पर्क में आये तो अक्सर इन आदिवासियों को, वनमानुषों और सभ्य यूरोपियों के बीच वर्गीकृत किया जाने लगा। विशेष रूप से केप आफ गुड होप अन्तरीप में रहने वाले हौटेन्टौट जाति के लोग, पश्चिमी देशों के विचारकों को इस प्रकार के वर्गीकरण के लिए उचित प्रतिनिधि प्रतीत होते थे। कहा जाता था कि उनकी भाषा, वनमानुषों की किटकिटाहट से सिर्फ एक ही कदम आगे है।

इस प्रकार, 'लुप्त कड़ी' (Missing link) के अस्तित्व का विचार डार्विन और वास्तविक विकासवादी दर्शन से बहुत समय पहले से ही वर्तमान था। डार्विन स्वयं मनुष्य और वनमानुष के सही सम्बन्ध की खोज करने के प्रयत्नों से सतर्कता के साथ बचे रहे, लेकिन उनके कुछ अनुयायी, विशेष रूप से टी० एच० हक्सले, इस समस्या को सुलझाने के लिए जोर-शोर से जुट गये थे। १८६० में विज्ञान की प्रगति के लिए ऑक्सफोर्ड में ब्रिटिश एसोसिएशन की जो विख्यात बैठक हुई थी, उसमें कुछ ऐसी बातें हुईं जिन्होंने हक्सले को मनुष्य के इतिहास की खोज के लिए उत्तेजित कर दिया। बैठक में पुराने

विचारों के वैज्ञानिकों की जो कटु आलोचनाएँ हुई थीं, वे बहुत-कुछ हक्सले को ही सहन करनी पड़ी थी। इंग्लैंड के उस समय के शरीर-रचना के अग्रणी वैज्ञानिक रिचार्ड ओवेन भी इस बैठक में भाग ले रहे थे। वे डार्विन और उनके अनुयायियों के जानी दुश्मन थे। उन्होंने, मनुष्य को, स्तनपायियों की एक अलग ही उप-श्रेणी में रखकर, प्राणि-जगत् में उसकी अनूठी स्थिति बनाये रखने की कोशिश की और इस उपश्रेणी का नाम आर्चेनसिफैला (Archencephala) रखने का प्रस्ताव किया। यही वर्गीकरण मस्तिष्क की विशेषताओं पर आधारित था जो कि, ओवेन के अनुसार, मनुष्य के अतिरिक्त और किसी प्राइमेट वर्ग के प्राणी में नहीं पायी जातीं। इस प्रकार की बातें सुनकर हक्सले का क्रोध भड़क उठा और वे यह सिद्ध करने पर जुट गये कि ओवेन का प्रतिपादन गलत है और मनुष्य प्राइमेट वर्ग के अन्य प्राणियों का सीधा सम्बन्धी है। उन्होंने, इस सम्बन्ध में एक व्याख्यानमाला तैयार की जो 'प्रकृति में मनुष्य की स्थिति-सम्बन्धी प्रमाण' शीर्षक से सन् १८६३ में प्रकाशित हुई।

हक्सले ने अपनी इस कृति में ओवेन के तर्कों की धज्जियाँ उड़ा दीं। आगे चलकर इसी प्रसंग में जो काम हुआ उसकी रूप-रेखा भी बहुत हद तक, इसी रचना के आधार पर चलती रही। हक्सले ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि, "बन्दर के मस्तिष्क का ऊपरी तल, एक प्रकार से, मनुष्य के मस्तिष्क के मानचित्र की छोटी-सी रूपरेखा है और मनुष्य जैसे वनमानुषों में इस मानचित्र के ब्यौरे अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते हैं और अन्त में चिम्पान्जी और ओरंग के मस्तिष्क तक पहुँचने पर, इसमें और मनुष्य के मस्तिष्क में केवल दोनों की बनावट की थोड़ी-सी विशेषताओं का ही कुछ अन्तर रह जाता है।" हक्सले यह बात मानने को पूरी तरह तैयार थे कि स्वयं मनुष्य के मूल का ठीक-ठीक पता नहीं है और हो सकता है कि वह लाखों वर्ष पहले के, किसी एक, समान पूर्वज में निहित हो। लेकिन उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि आधुनिक वनमानुष हमारे जीवित सम्बन्धियों में निकटतम है। यदि हक्सले ने बड़े-वनमानुषों और मनुष्य की शारीरिक समानता पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया तो इसका भी एक कारण है, जो हमें याद रखना होगा। जिस समय उन्होंने यह विचार प्रकट किया था उस समय विकासवादी वैज्ञानिक 'विशिष्ट सृष्टि-सिद्धान्त' में विश्वास रखने वाले कट्टरपंथियों के विरुद्ध मुख्य रूप में एक सैद्धान्तिक आधार पर संघर्ष कर रहे थे। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना होगा कि उस समय बहुत ही कम, मानव-फॉसिलों का पता चला था और प्राप्त फासिल भी नाम-मात्र को ही थे। हमारे जीवित सम्बन्धी किसी भी चिड़ियाघर में देखे जा सकते थे इसलिए मनुष्य की कल्पना में उनका छा जाना

अवश्यम्भावी था। गम्भीर विचारक यहाँ तक विश्वास करने लगे थे कि छोटे सिर वाले—अधपगले—मूर्ख इस प्रकार के व्यक्ति हैं जिन्हें प्रकृति ने मानव-इतिहास के सुदूर अतीत के नमूने के रूप में ला उपस्थित किया है।

बीसवीं सदी के आरम्भ-काल में ऐसा जान पड़ता था कि वनमानुषों से मनुष्य का उद्‌गम काफी हद तक निश्चित हो गया है। पिथेकेन्थ्रोपस यानी जावा वनमानुष की खोपड़ी के ऊपरी भाग का पता लगने से इस विचार को और बल मिला। कई लोगों का खयाल था कि चिम्पान्जी के तरह के किसी जीव से जावा वनमानुष की श्रेणी तक का विकास बिल्कुल आसान बात रही होगी, और फिर जावा वनमानुष से, निएन्डरथालीय मानव और निएन्डरथालीय मानव से आधुनिक मानव का विकास हो गया होगा। लेकिन इसी शताब्दी के मोड़ पर, इस विचार के विरुद्ध एक नया विद्रोह शुरू हो गया।

शरीर-रचना के वैज्ञानिकों का ध्यान दक्षिणपूर्व एशिया में रहने वाले एक एक छोटे से वृक्ष पर रहने वाले प्राणी की ओर आकर्षित हुआ। इस जन्तु में प्राइमेट वर्ग के प्राणी की निश्चित विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस जन्तु का नाम टार्सियर है (वैज्ञानिक नाम टार्सियस स्पेक्ट्रम), इसकी आँखें बड़ी-बड़ी और कद एक छोटी बिल्ली के बराबर होता है और इसका मस्तिष्क तथा कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार की होती हैं, जिससे पता चलता है कि यह निम्न वर्ग के बन्दरों का सम्बन्धी है। एक प्रसिद्ध अंग्रेज शरीर-रचना-वैज्ञानिक, एफ० वुड जोन्स ने १६१८ में, प्रचलित सिद्धान्त के विरोध में यह विचार पेश किया कि मनुष्य के पूर्व पुरखे वनमानुषों के बजाय टार्सियर-बन्दर थे। श्री जोन्स तब से, अपने इस विचार पर जमे रहे और उन्होंने उस विचारधारा को और आगे विकसित किया।

वुड जोन्स इस बात पर जोर देते हैं कि मनुष्य की वंशपरम्परा बहुत प्राचीन है, जो अतीत में, करोड़ों वर्ष दूर तृतीय (Tertiary) युग तक पहुँचती है। उन्होंने भविष्यवाणी की है कि यदि कभी मनुष्य के प्रथम-पुरखों की खोज हो सकी तो वे "बहुतों की कल्पना के विपरीत भद्दे और लटकने वाले बालदार वनमानुषों से सर्वथा भिन्न होंगे और यह प्राणी जिन भूविज्ञानीय परतों में पाया जायेगा, वह विशाल वनमानुषों के पूर्ण विकास काल से कहीं पहले का होगा।" उनका कहना है कि मनुष्य के पुरखे छोटे-छोटे चुस्त प्राणी थे, जिनकी टाँगें पहले से ही उनकी बाँहों से अधिक लम्बी थीं, उनके जबड़े छोटे-छोटे थे पर दाँत बाहर निकले हुए नहीं थे, मस्तिष्क-कोष्ठ (खोपड़ी) बड़ा था। वे पेड़ों में झूलने वाले प्राणी नहीं थे। जोन्स तर्क प्रस्तुत करते हैं कि मनुष्य के हाथ और पैर इतने विशिष्टता-प्राप्त हैं कि वे, पेड़ों में रहने वाले पुरखों के हाथों

और पैरों से विकसित होकर बने हुए नहीं हो सकते। उनके विचार से आधुनिक 'टार्सियर' बन्दरों ने पेड़ों पर रहने की विशेषता बाद में प्राप्त की, लेकिन इस जाति के हमारे पुरखे जमीन पर चलने वाले जन्तु थे।

इस तरह, वुड जोन्स का मूल-मनुष्य, वामन मानव (Homunculus) जैसा लगता है। जब पहले-पहल उन्होंने इस विचार का प्रतिपादन किया, तब उनके बहुत कम समर्थक थे। हेनरी फेअरफील्ड ओसबोर्न, जो पुरा जीव-विज्ञ होते हुए भी वुड जोन्स के अनुयायी नहीं थे, भी वामन उषा-मानव (Dawn man) की कल्पना करते थे, ऐसे पूर्व-मानव की ओर जो तृतीय (Tertiary) युग में लाखों वर्ष पहले मौजूद था। उनका दावा था, "मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि ओलिगोसीन काल के आगे (Upper Oligocene) के समय में भी हमें ऐसे जीव मिलेंगे जिनके विकास की दिशा मनुष्य की ओर होगी और इन जीवों के हाथ-पैर मनुष्य के से होंगे।"

जो आइमेट जन्तु-विज्ञ इस पुराने विचार को मानते थे कि मनुष्य वन-मानुष का सुधरा रूप है, उन्होंने वुड जोन्स और ओसबोर्न का जोर-शोर से विरोध किया। इन लोगों का दावा था कि मनुष्य के प्रथम-पूर्वज इतने प्राचीन नहीं हो सकते जितना वुड जोन्स या ओसबोर्न का कहना है। विलियम किंग ग्रिगौरी (William King Gregory) ने लिखा, "मनुष्य के सुदूर तृतीय युग के पुरखों के बारे में यह कल्पना करना कि उनकी लम्बी टाँगें थीं, लम्बे अँगूठे, बड़ा मस्तक, छोटा चेहरा और सुत्रा दाँत आदि थे—जिनसे कि आज के मनुष्य की पहचान होती है—काल-भ्रम लगता है।" परन्तु १९४० तक 'वनमानुष के सुधरे रूप' वाला मत भी कुछ ढीला पड़ गया। उस परिवर्त्तन का कारण था दक्षिण अफ्रीका में प्रोकौंसल अफ्रीकैनस (Proconsul Africanus) नामक जन्तु के फॉसिल की खोज, जो आरम्भिक मायोसीन-युग (Miocene) का यानी कोई दो करोड़ वर्ष पहले का, प्राणी है। इस जन्तु में पुरानी दुनिया के आरम्भिक बन्दरों और बड़े वनमानुषों की मिली-जुली विशेषताएँ पायी जाती हैं। जॉन्स हापकिंस विश्वविद्यालय के विलियम एल० स्ट्रास जूनियर (William L. Straus) ने कुछ संदिग्ध भाव से यह मत सामने रखा है कि मनुष्य के प्रथम पुरखे वनमानुषों के बजाय बन्दरों से अधिक मिलते-जुलते हो सकते हैं। मनुष्य के पुरखों से सम्बन्धित लम्बे समय से चले आ रहे विवाद में, स्ट्रास ने हमेशा बहुत ही सतर्कता के साथ संगत विचार व्यक्त किये हैं। उनका ख्याल है कि 'वनमानुषों से मनुष्य के विकास' के मत में सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह 'मत' मनुष्यों और बन्दरों तथा लेमूरों के बीच की समानता का स्पष्टीकरण करने में असमर्थ है। अभी हाल ही में प्रसिद्ध अंग्रेज

प्राइमेट-जीव-विज्ञ इस बात पर विश्वास करने लगे हैं कि मनुष्य का विकास बड़े वनमानुषों के पूर्व ही, अलग दिशा में आरम्भ हो गया था। यहाँ तक कि उन्होंने यह सुझाव भी दिया है कि यदि ओलिगोसीन युग (दो करोड़ वर्ष पहले) कोई ऐसा आरम्भिक बन्दर, जैसे कि पैरापिथेकस (Parapithecus) मिल जाय, जो टार्सियर बन्दर से मिलता-जुलता हो और जिसके विकास की दिशा मनुष्य की ओर प्रतीत होती हो, तो वुड जोन्स के टार्सियर-बन्दर के आधार पर प्रस्तुत मत और स्ट्रास के विचार में तालमेल बनाया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरज़ेलर की हाल की घोषणा से पहले ही मानव-विकास के अध्ययन में, सम्भावनाओं के क्षेत्र का विस्तार हो रहा था या विचारों में एक नया मोड़ आ रहा था। कुछ लोगों के इस 'मत' को अब नहीं माना जाता कि मनुष्य हाल ही में पेड़ों से उतर कर आया और कुछ अन्य क्षेत्रों में इस मत का अब पहले की तरह समर्थन नहीं किया जाता। अब नये प्रमाणों की प्रतीक्षा और अपने निर्णयों को बाद में प्रस्तुत करने की अधिक इच्छा पाई जाने लगी है। इस प्रकार खुले मन से नये विचारों को ग्रहण करने का वातावरण जब बन चुका था तब हरज़ेलर ने ओरियोपिथेकस पर अपना नया अध्ययन पेश किया।

यह फॉसिल १८७२ में ही ज्ञात था और फ्रांसीसी पुराजीवविज्ञ पाल जरवेई (Paul Gervais) ने इसके बारे में विस्तार से लिखा था। उन्होंने इसे पुरानी दुनिया का बन्दर बताया था। मूल फॉसिल और बाद की खोजों का अध्ययन करने के बाद हरज़ेलर को विश्वास हो गया कि ओरियोपिथेकस तृतीय युग में पाया जाने वाला पहला मानवाकार जीव है। इसके बारे में यह सोचा जाता था कि यह दो करोड़ वर्ष पूर्व के मायोसीन-युग का है—पहला मानवाकार जीव है। स्पष्ट रूप से उनके विचार का आधार दाँत—इनमें भीतर के मुखा दाँत भी शामिल हैं—दाँतों की सीधी काट और छोटा चेहरा आदि जैसी कुछ तकनीकी बातें हैं। यहाँ पर इस बात की ओर ध्यान देना होगा कि ओरियोपिथेकस की खोपड़ी के कुछ अंश ही मिले हैं, उनसे उसके पूरे आकार की कल्पना नहीं की जा सकती है।

लोक-प्रचलित शब्दों में ओरियोपिथेकस एक निम्न जाति का बन्दर है। यह उन अर्थों में मनुष्य नहीं है जैसा कि कुछ संवाददाताओं ने सोच लिया था। हालाँकि उसके दाँतों के बीच खाली स्थान नहीं है, उसका जबड़ा वनमानुषों की तरह बाहर को उभरा नहीं है, आदि-आदि। ऐसे फॉसिल और जीवित प्राइमेट मौजूद हैं जिन्हें उपर्युक्त वर्णन के अन्तर्गत रखा जा सकता है, लेकिन यह सब कुछ होने पर भी मुझे पक्का विश्वास है कि उसे 'मनुष्य' कोई नहीं कहेगा।

कुल मिलाकर इस सारी कहानी का सार यह है कि हरजेलर ने एक ऐसी समस्यामूलक हड्डी के टुकड़े पर फिर दिलचस्पी पैदा कर दी, जिसे हम बहुत अरसे से उँगलियों से टटोल रहे थे। तृतीय युग के घोड़े के विकास का सूत्र जोड़ने के लिए पुराजीवविज्ञों के पास, अध्ययन के लिए हजारों अस्थि-अवशेष हैं। इस बात का ध्यान रखते हुए कि लाखों वर्षों के विशाल अन्तर वाले युग का मनुष्य के पूर्ववर्ती जीव के अस्थिपंजर का तो प्रश्न ही नहीं है, किसी बन्दर का भी पूरा अस्थिपंजर प्राप्त नहीं है, प्राइमेट जीव-विज्ञ यदि अँधेरे में टटोलते फिरते हैं तो उसके लिए उन्हें क्षमा कर दिया जाना चाहिए। सम्पूर्ण तृतीय युग में, जिसके अन्तर्गत लगभग छः से आठ करोड़ वर्ष की अवधि आती है, हमें प्राइमेट वर्ग के विकास की कहानी थोड़ी-सी टूटी-फूटी हड्डियों और दांतों से पढ़नी है। इसके अलावा ये फॉसिल भी पुरानी दुनिया के महाद्वीपों के एक-दूसरे से हजारों मील दूर भागों से इकट्ठे किये गये हैं।

यदि हम मनुष्य के इतिहास को कदम-ब-कदम पीछे की ओर पढ़ सकने में समर्थ होते तो हम उसके मानवीय आवरण को बखिया-बखिया, पैबन्द-पैबन्द उतरते हुए देखते। लेकिन मनुष्य के वर्तमान रूप का इस प्रकार निरावरण होना केवल एक ही स्थान में सीमित न होता। यदि हम विकासवाद द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों को स्वीकार करते है तो हमें यह मानना पडेगा, कि मनुष्य का विकास क्रमिक रूप में हुआ; वह पशुओं की दुनिया से, लम्बे युगों के दौरान एक-एक करके मानवीय विशेषताओं को इकट्ठा करता हुआ पशुओं की दुनिया से उभर कर मनुष्य बना। सिर्फ उसका मस्तिष्क ही एक ऐसी वस्तु है, जिसमे लगता है कि एकाएक बहुत तेजी से विकास हुआ और यह उसका मस्तिष्क ही है जिसने उसे अपने सम्बन्धियों से इतनी दूर ला पहुँचाया।

अभी हमारा ज्ञान इतना समृद्ध नहीं है कि हम सही-सही तौर पर यह तय कर सकें कि वे कौन से शारीरिक गुण या विशेषताएँ हैं जो सिर्फ मनुष्य मे ही पाये जाते हैं। जैसा कि स्ट्रास ने सही तौर से ध्यान दिलाया है कि 'विशिष्ट शारीरिक रचना' का जो सामान्य अभाव प्रतीत होता है, उसके कारण प्राइमेटों के जाति-इतिहास का अध्ययन इतना कठिन हो गया है। मनुष्य-शरीर के कुछ लक्षण, प्राइमेट वर्ग की वंश-परम्परा के दूसरे जन्तुओ मे भी हो सकते हैं परन्तु उन लक्षणों का विकास ऐसी दिशा में नहीं कि ये जन्तु मनुष्य बन जाते; कुछ लक्षण, जिन्हें हम मानवीय कहते हैं, वस्तुतः ऐसे गुण हो सकते हैं जो प्राइमेट वर्ग के जीवों की पुरानी और सामान्य विशेषताएँ हों, लेकिन जो आगे चल कर मनुष्य में तो बचे रह गये पर उसके आधुनिक और विशिष्टता प्राप्त सम्बन्धियों में लुप्त हो गये।

मनुष्य के विकास की कहानी को आगे बढ़ाने के लिए हम पूर्णरूपेण कुछ अस्थि-अवशेषों की प्राप्ति पर निर्भर हैं। जब तक कुछ और खोजें नहीं हो जातीं तब तक विकास के प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का भी वैज्ञानिक रिकार्ड में पाया जाना अवश्यम्भावी है। कुछ लोग, हर्नोल्ड की भाँति छोटे चेहरे, आगे के खड़े दाँतों और छोटी गोल ठुड्डी के आधार पर निष्कर्ष निकालेंगे। ये लोग एक ऐसी वामन-सी प्रेत मानवाकृति देखेंगे जो सुदूर काल-वन के किसी कोने से, हमें मुँह चिढ़ाती होगी। कुछ अन्य लोग, जो प्रथम वर्ग के लोगों से किसी भी तरह कम नहीं हैं, कहेंगे कि यह मायावी वामन मानवीय प्रेत उन दबी मानवीय लालसाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो कि अपने जैसा एक पूर्वज पाने का स्वप्न देखता ही रहता है। वे कहेंगे कि हमारे चारों ओर जीवित प्राइमेट वर्ग के जीवों की दुनिया में बड़े कान और छोटे चेहरे वाले लेमूर हैं, और ऐसे बन्दर हैं जिनके सम्मुख के प्रेतों जैसे चेहरे और नन्हे मानव के से बड़े-बड़े मस्तिष्क-कोष्ठ हैं।

अब अन्त में अभिभूत भाव से हम अपने सिर हिला सकते हैं और इस बात को स्वीकार करने को विवश हैं कि केवल मात्र एक ही ऐसी वंश-परम्परा स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं देती जो कि मनुष्य के रूप में विकसित हो गयी हो, अपितु हमारे सम्बन्धी से जान पड़ने वाले अनेक वंशानुक्रम हैं। ऐसा लगता है जैसे हम एक गोरखधन्धे के बीच आ फँसे हैं और याद नहीं आता कि हम वहाँ पहुँचे कैसे।

८. स्वप्न-जगत् का प्राणी

अब यह समझा जा सकता है कि समाचार-पत्रों द्वारा, डार्विनवाद और 'लुप्त कड़ी' के खत्म होने की नाटकीय घोषणा के बावजूद, हमारा वह वामन मानवीय प्रेत, इस प्रकार की वस्तु सिद्ध नहीं हो सका। यदि वह मनुष्य की ओर प्रगति करने वाले विकास-क्रम की मुख्य धारा का जीव सिद्ध हुआ भी—जो कि अभी बहुत संदिग्ध है—तो भी उससे हमें मानव-मस्तिष्क के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। वह एक छोटा-सा जीव है, कल्पना के किसी भी छोर पर उसे मनुष्य नहीं माना जा सकता; और यदि वह सचमुच कभी मनुष्य बना भी होगा तो वह घटना उसके समय से लाखों वर्ष के अन्तर पर कहीं भविष्य में हुई होगी। अखबारों के अनेकों बड़े-बड़े शीर्षक, टस्कानी के एक छोटे जीव को, विकास की एक लम्बी प्रक्रिया के बिना मनुष्य में नहीं बदल सकते। जिन लेखकों ने डार्विन के सामान्य सिद्धान्त को झूठा साबित करने के उद्देश्य से इस 'नन्हे मानव' को अपने लेखों का विषय बनाया था, वे ज्यादा-से-ज्यादा, केवल एक नई 'लुप्त कड़ी' का शोर मचा रहे थे।

हमें अब इस समस्या के कुछ हाल के उन पहलुओं की पड़ताल करनी होगी जिनका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ: अर्थात् वह रहस्य, जो कि मानव-मस्तिष्क के सम्बन्ध में बना हुआ है। एक अत्यन्त अनुभूतिशील दार्शनिक ने एक बार कहा था कि मनुष्य के बारे में जो सत्य है वह उसी के भीतर छुपा हुआ है। हो सकता है कि यह बात सही साबित हो, परन्तु कठिनाई यह है कि यदि वह रहस्य सचमुच मनुष्य ही में है तो उसे प्रकट कैसे किया जाय

और जब वह एक बार प्रकट हो जाय तो उसका ठीक-ठीक अर्थ कैसे लगाया जावे।

यदा-कदा, मनुष्य की लाखों की आबादी में से कोई छः बरस का बच्चा या चौदह-पन्द्रह वर्ष का किशोर एकाएक बूढ़ा हो जाता है और मर जाता है। इस अजीब बीमारी को प्रोजेरिया (*Progeria*) या अकाल-जरा कहते हैं और इसका कारण पूर्णतया अज्ञात है। रोग की जाँच पर बताया गया है कि इस बीमारी में, बाल झड़ जाते हैं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, और चमड़ा ढीला हो जाता है, इसके साथ ही हृदय और रक्तवाहिनी नाड़ियों में भी बुढ़ापे के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। चिकित्सा-विज्ञान ने अब तक जो अध्ययन किया है, उसके अनुसार इस प्रकार के दुर्लभ मामलों में जरा या बुढ़ापे के आगमन का वेग बहुत तेज हो जाता है। लेकिन ऐसा होता कैसे है, इस बारे में कुछ मालूम नहीं हो सका है। हो सकता है कि इसका कारण अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Ductless glands) में कहीं हो।

यद्यपि यह रोग विरल है तो भी इससे मनुष्य-शरीर के अन्दर एक ऐसे काल-यन्त्र का पता चलता है जो तेज या धीमी गति में चलकर मनुष्य के जीवन की अवधि को अल्प या दीर्घ बना सकता है। शरीर के अधिक दृश्य अंगों की तरह इस पर विकासवादी प्राकृतिक चुनाव का प्रभाव पड़ता रहता है। इस काल-यन्त्र का इससे भी अधिक विचित्र एक पहलू और है, यह किसी अवविशेष के विकास पर भी असर डाल सकता है। अलग-अलग जानवरों में कुछ अजीब प्रकार की विशिष्टताएँ इस काल-यन्त्र के प्रभाव से उत्पन्न हुई, जैसे कि आयरलैण्ड की एक लुप्त जाति के छुरे जैसे दाढ़।

मनुष्य से भी कहीं अधिक निर्विशेष और सामान्य प्रकार की भिन्नित विशिष्टता है उसका मस्तिष्क। मनुष्य का मस्तिष्क उससे अधिक विशालकाय गोरिल्ला के दिमाग से दुगना बड़ा होता है। मनुष्य को अपना यह मस्तिष्क शैशव काल में प्राप्त करना होता है और इसका अधिकतर विकास, उसके निकटतम जीवित सम्बन्धी, यानी बड़े वनमानुषों, की तुलना में बहुत तेजी से होना आवश्यक है। इसे यथार्थतः रात भर में उग आने वाले कुकुरमुत्ते की तरह बढ़ जाना चाहिए और इस प्रकार का द्रुत विकास मनुष्य के पैदा होने के आरम्भिक महीनों में हो जाना चाहिए। यदि मस्तिष्क का पूर्ण विकास भ्रूण-अवस्था में होता तो मनुष्य, कब का इस ग्रह से अदृश्य हो गया होता; क्योंकि पूर्ण विकसित मस्तिष्क के साथ मनुष्य का गर्भ से बाहर आ सकना असम्भव होता। मानव-शिशु के जन्म में तुलनात्मक दृष्टि से जो कठिनाई होती है, उसका एक कारण शिशु के सिर का बड़ा होना है। जब हम पैदा होते हैं तब

हमारे मस्तिष्क का आयतन लगभग ३३० घन सैण्टीमीटर होता है जो शिशु गोरिल्ला के मस्तिष्क से थोड़ा ही अधिक है। यही कारण है वनमानुष और मनुष्य के बच्चे शुरू-शुरू की हालत में बहुत हद तक एक जैसे दिखाई देते हैं।

कुछ समय बाद, मानव-शिशु में एक आश्चर्यजनक बात होती है। पैदा होने के पहले वर्ष में ही बच्चे का मस्तिष्क तिगुना हो जाता है। मस्तिष्क के विकास की यही छलांग, मनुष्य को उसके निराले मानवीय गुण प्रदान करती है। शेष प्राणि-जाति में इस तरह की कोई बात देखने में नहीं आती। जब कभी विकास की यह छलांग असफल होती है, जैसा कि उन दुर्लभ अवसरों पर होता है जबकि मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता, तो लघु-शीर्षता (Microcephaly) या छोटे सिर की व्याधि हो जाती है और तब बच्चा वज्र मूर्ख हो जाता है। शरीर के आन्तरिक रहस्यों में कोई ऐसी वस्तु है जो मस्तिष्क के विकास का समय निर्धारित करती है। मनुष्य और प्राइमेट वर्ग के अन्य प्राणियों के बीच शारीरिक समानताओं को मान्यता देते हुए यदि हम अपने मस्तिष्क की तुलना प्राइमेट वर्ग के जीवों से करें तो हम यह जानने में असमर्थ हैं कि विकास-क्रम के किस काल में या विकास की किन दशाओं में, मनुष्य के पूर्वपुरुष का मस्तिष्क जन्मोपरान्त इस प्रकार विस्तृत होने लगा था। इस गुण के कारण मनुष्य अपने जीवित सम्बन्धियों की मानसिक शक्ति की तुलना में कहीं दूर निकल गया है। हारवर्ड के डाक्टर टिली एडिंजर ने (जिनका उद्धरण हम पहले भी दे चुके हैं) कहा है, "तुलनात्मक शरीर-रचना-विज्ञान जिन मस्तिष्कों के साथ होमो सैपियन (Homo Sapiens—मनुष्य का वैज्ञानिक नामकरण) के मस्तिष्क की तुलना करता है उनसे मानव मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ है। उसका विकास मानव प्रजातियों के परिवार होमीनिडी में और विकास-क्रम की किसी बाद की अवस्था में हुआ। इस परिवार की अन्य प्रजातियाँ नष्ट हो गयीं।"

दूसरे शब्दों में, हम चाहे कितने ही बन्दरों के मस्तिष्कों की चीर-फाड़ करें, उन्हें तोलें या नापें, लेकिन हमारे मानवीय मस्तिष्क के काल-यन्त्र की कुञ्जी वहाँ नहीं है; हाँ यह अवश्य है कि इस सारी प्रक्रिया से हम बहुत-सी बातें सीख सकेंगे। यह मस्तिष्क केवल मानववर्ग के जनित्र द्रव्य (Germ plasm) में उत्पन्न हुआ और हम उस परिवार के अन्तिम जीवित प्रतिनिधि हैं। जब हम प्राणि-विज्ञान के उस पुराने नियम पर विचार करते हैं कि प्रत्येक जीव के व्यक्तिगत विकास में, उस वर्ग का विकास-क्रम दुहराया जाता है, जिसका कि वह स्वयं एक सदस्य है, तो यह सोचे बिना नहीं रहा जा सकता

कि मानव-मस्तिष्क में यह जो आश्चर्यजनक वृद्धि होती है, यह शायद मोटे तौर पर उसी प्रकार की कोई वस्तु हो जो मनुष्य के भूविज्ञानीय इतिहास में कभी हुई हो, अर्थात् तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम समय में 'एकाएक विस्फोट की तरह से (भूविज्ञानीय काल-गणना की दृष्टि से) मस्तिष्क का बढ़ जाना'। डार्विन-वालेस विवाद पर विचार करते समय हम इस विषय का उल्लेख कर चुके हैं। अब हम यह देखेंगे कि उस समय हमने जो तथ्य प्रस्तुत किये थे, उन पर नये प्रमाणों का क्या प्रभाव पड़ा है।

पिल्टडाउन खोपड़ी से सम्बन्धित धोखाधड़ी के महत्व और डार्विन-वालेस-विवाद पर उसके प्रभाव की चर्चा करते समय उस घटनाक्रम अथवा विकास-क्रम में लगे समय के बारे में पुराने परम्परागत भूविज्ञानीय अनुमानों को मैंने स्वीकार कर लिया था, जिसे आम तौर पर 'हिमयुग' के नाम से जाना जाता है। मैंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया था कि मनुष्य के विकास के बारे में हमारी सारी जानकारी इसी युग तक सीमित है। मनुष्य के कुछ ही सहस्त्राब्दियों के लिखित इतिहास में, दस लाख वर्ष का समय बहुत अधिक जान पड़ता है लेकिन भूविज्ञानीय इतिहास के या विकास-क्रम के दृष्टिकोण से, यह अवधि ब्रह्माण्ड के काल-क्रम को नापने वाली घड़ी का केवल एक मिनट मात्र है।

हिमयुग में मनुष्य के सिवा जीवन के अन्य रूपों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। इस तरह से यह युग, विशेष रूप से अपने अन्तिम वर्षों में, महानाश का युग रहा है। कुछ विशाल जन्तु, जिनकी अन्तर्महाद्वीपीय यात्राओं से वे मार्ग बने थे जिन पर मनुष्य पहले पहल चला था, वे इस काल में धरती से सदा के लिए लुप्त हो गये। शीतोष्ण-कटिबन्ध के हाथी, वे भीमकाय, पिघलती बर्फ के किनारे अपने भारी-भारी अन्तिम दाँतों को छोड़ नष्ट हो गये। जिन विशाल सींगों वाले अर्ने भैंसों के झुण्डों से पोषित हो, जगह-जगह भटकते मनुष्य ने अपने अज्ञान की लम्बी सदियाँ गुजारी थीं, वे भूतकाल के अन्धकार में विलीन हो गये। इसी हिमयुग की पहली शीतकालीन अवधि में, जिस वनमानव के सांस्कृतिक-अवशेष यदा-कदा पाये जाने वाले पत्थर के टुकड़ों में कदाचित् ही पहचाने जा सकते हैं, वही वनमानुष, हिमयुग की चौथी शीतकालीन अवधि के अन्त तक, कलाकार, दुनिया भर का घुमक्कड़, पाँचों महाद्वीपों को जीतने वाला और सबका स्वामी बन गया।

पृथ्वी के इतिहास में इससे पहले ऐसी कोई घटना कभी नहीं हुई थी. आखिर इस पृथ्वी पर से क्रूर जन्तुओं की प्रभुसत्ता का अन्त हो ही गया। भले के लिए हो या बुरे के लिए, अब जंगलों का बढ़ना या नष्ट होना, रेगिस्तानों का फैलना या खत्म होना, अधिकाधिक उस चालाक और कभी सन्तुष्ट न होने

चान प्राणी की इच्छा पर निर्भर रहेगा जो प्रकृति की प्रयोगशाला के हरे कुञ्जों से कुछ ही लाख वर्ष पहले, इतने रहस्यमय ढंग से चुपचाप सरक भागा था।

विकास की प्रगति में जिस तरह, समय की नापखोज की जाती है उसमें दस लाख वर्ष की अवधि बहुत कम होती है। हम यह मानकर चलते हैं कि जो प्राणी मनुष्य बनने वाला था, वह इस अवधि से पहले अपने पिछले पैरों पर चलता था, फिर भी यह सोचना पूरी तरह युक्तिसंगत है कि उसके सिर का उभरा हुआ जो अग्रभाग आगे चलकर नक्षत्रों और हिमयुगों को नापने वाला था, वह अभी एक ऐसी खोपड़ी का मन्द असहाय क्षेत्र था, जिसकी क्षमता दूसरे वनमानुषों से ज्यादा नहीं थी। फिर भी मनुष्य-जैसी एक ही सक्रिय प्रजाति के जीवन-इतिहास में दस लाख वर्ष का समय बहुत अधिक है, और उस काल में जब बर्फ की विशाल चादरें शीतोष्ण कटिबन्ध के बड़े-बड़े क्षेत्रों में छाती जा रही थीं तब प्राकृतिक चुनाव की जबरदस्त शक्तियाँ भी कार्यशील रही होंगी। लेकिन मान लीजिये, केवलमात्र एक क्षण के लिए यह मान लीजिये कि पृथ्वी के ऊपर बर्फ की तहों के फैलने की यह अवधि दस लाख वर्ष की नहीं थी—मान लीजिये हमारे भूविज्ञानीय अनुमान गलत हैं। जिस अवधि के बारे में हम दस लाख वर्ष का अनुमान करते रहे हैं, इसके बजाय वह अवधि एक-तिहाई मात्र थी।

ऐसी स्थिति में मनुष्य के इतिहास के बारे में क्या सोचा जाय? ऐसी हालत में मानवीय नाटक को, किस प्रकार की घिचपिच और घुटन-भरी थोड़े समय में घटित परिस्थितियों में अभिनीत माना जाय, और नाटक भी ऐसा कि जिसमें विकास के क्रमिक परिवर्त्तनों के साथ-साथ वह समय भी शामिल है जिसके दौरान मनुष्य जाति नई दुनिया में फैली। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की बात होने पर, हमें मानव-विकास-सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण पर नये सिरे से विचार करना पड़ेगा। सन् १९५६ में शिकागो विश्वविद्यालय के डाक्टर सीज़र एमिलिआनी (Cesare Emiliani) ने हिमयुग की काल-सम्बन्धी मान्यताओं के सम्बन्ध में ठीक इसी प्रकार की चौंकाने वाली बात पेश की। उन्होंने वस्तुओं की प्राचीनता और समय निश्चित करने की एक नई विधि द्वारा ऐसा किया। प्राचीनता निश्चित करने की यह विधि परमाणु-भौतिकी के क्षेत्र में विकसित की गई है।[1]

---

1. "Note on Absolute Chronology of Human Evolution", *Science* 123 (1956), pp. 924-26.

यह प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि किसी वस्तु की प्राचीनता निश्चित करने की यह प्रक्रिया पिछले दशक की बहुविज्ञापित कारबन-१४ विधि नहीं है। हालाँकि इस विधि के भी उपयोग हैं लेकिन उससे हमें अधिक-से-अधिक तीस या चालीस हजार साल पहले तक का ही पता चल पाता है। परन्तु नई विधि में, जिसे शिकागो-विश्वविद्यालय की प्रयोगशालाओं में विकसित किया गया, ऑक्सीजन-१८ का प्रयोग होता है। समुद्री जीवों के खोलों में ऑक्सीजन के इस समस्थानिक (Isotope) की मात्रा का अध्ययन करने से इस बात का पता चला है कि किसी चूनिया खोल, जैसे कि एक सीपी के खोल में ऑक्सीजन-१८ का कुल प्रतिशत मालूम होने से यह जाना जा सकता है कि जिस समय, उस सीपी के शरीर का बाहरी खोल बनना शुरु हुआ था, उस समय उस पानी का तापमान क्या था जिसमें कि वह सीपी रहती थी। ऑक्सीजन-१८ अलग-अलग तापमान में अलग-अलग प्रकार की रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरती है। उदाहरण के तौर पर, ज्यों-ज्यों पानी का तापमान बढ़ेगा त्यों-त्यों सीपी के खोल में ऑक्सीजन-१८ की मात्रा कम होती जायेगी।

समुद्री-तल की वस्तुओं अर्थात् समुद्र के थाले में स्थिर और सदियों से ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई रेत-मिट्टी के, नमूने लेकर डाक्टर एमिलियानी ने छोटी-छोटी सीपियों के टुकड़ों के कारण उनमें विद्यमान खड़िया यानी कैल्सियम कारबोनेट का विश्लेषण किया और उनकी ऑक्सीजन-१८ की मात्रा का पता लगाया। इस तरह समुद्रों की रासायनिक प्रकृति का विश्लेषण करते समय उन्हें ज्ञात हुआ कि समुद्र के तल पर युगों से छोटे-छोटे अत्यन्त सूक्ष्म सीपी-कण, हिमपात की तरह धीरे-धीरे गिरते रहे हैं। अलग-अलग गहराई से प्राप्त इन सूक्ष्म कणों का विश्लेषण करके, भूतकाल की विभिन्न अवधियों में जल के तापमान में जो परिवर्तन हुए, उनका पता लगाया जा सकता है। उन्होंने समुद्र-तल पर अलग-अलग युगों में एकत्र चूनिया पंक की एक के बाद दूसरी परत के नमूनों का क्रम से अध्ययन किया और इस बात का पता लगाया कि समुद्र-तल की विभिन्न परतों के सूक्ष्म चूनिया कणों में ऑक्सीजन-१८ की अलग-अलग मात्रा होने से प्रकट होता है कि महाद्वीपों पर बर्फ के ज्यादा-से-ज्यादा फैलाव का समय और समुद्र-तल की ऊपरी आधुनिक परत के नीचे की अन्य परतों के अधिकतम शीत की अवधियाँ, एक दूसरे के समकालीन हैं।

अतलान्तिक महासागर और कैरीबियन सागर-तल के नमूनों का अध्ययन करने के बाद डाक्टर एमिलियानी इस परिणाम पर पहुँचे कि पृथ्वी पर कड़कड़ाती सर्दी की पहली अवधि और सम्भवतः यूरोप में पहली बार बर्फानी

चादर के जमने का समय शायद तीन लाख वर्ष से पहले का नहीं रहा होगा। यह ठीक है कि आक्सीजन १८ से वर्षों का नहीं बल्कि सापेक्षिक गर्मी और सर्दी की अवधियों का पता लगता है। लेकिन समय का, वर्षों का सही हिसाब कार्बन-१४ की प्रसिद्ध विधि से लगाया गया। चूँकि कार्बन-१४ भी समुद्र-तल के चूनिया पंक में पाया जाता है, इसलिए तल पर एकत्र चीजों की ऊपरी सतह का समय ४० या ५० हजार वर्ष पूर्व तक ठीक-ठीक आँका जा सकता है।

बर्फ का आखिरी पिघलना शुरू होने का समय लगभग बीस हजार वर्ष पूर्व निर्धारित हो जाने से समुद्र-तल की एक-सी और सदा स्थिर रहने वाली परतों के कारण, साथ ही अलग-अलग शीत-अवधियों के ग्राफ और परतें जमा होने की स्पष्ट रफ्तार, जैसा कि कार्बन-१४ विधि द्वारा हाल की परतों का समय निश्चित कर लिया गया था, के सम्मिलित उपयोग से इनकी आयु-गणना करना संभव हो गया। अध्ययन द्वारा यह भी पता चला है कि लगभग ५० या ६० हजार वर्ष के अन्तर से बर्फ की विशाल चादरों के घटने और बढ़ने में पर्याप्त हद तक नियमितता विद्यमान रही है।

इस प्रकार डाक्टर एमिलिआनी और उनके सहयोगियों ने हिमयुग की अलग अवधियों की जो काल-गणनाएँ निर्धारित की हैं, उनमें पहले के परम्परागत अनुमानों से बहुत फर्क है। लेकिन इन्हें व्यापक समर्थन मिला है और इन पर विचार किया जा रहा है। इस नई विचारधारा के अनुसार, सम्पूर्ण हिमयुग की कुल अवधि लगभग छः लाख वर्ष मानी गई है। आँकड़ों से जैसा प्रतीत होता है काल-गणना में यह परिवर्तन वस्तुतः उससे कहीं अधिक आश्चर्यपूर्ण है। पुराने आँकड़ों के अनुसार हिमयुग की पहली बर्फ जमने की अवधि यानी गुंज (Gunz) ग्लेशियेशन का समय करीब-करीब दस लाख वर्ष पूर्व माना जाता था। परन्तु नई काल-गणना के अनुसार, बर्फ की पहली बड़ी चादर के जमने का समय केवल तीन लाख वर्ष के लगभग होगा। इसमें हिमयुग के आरम्भ से पहले की, कुछ अस्पष्ट घटनाओं के लिए लगभग तीन लाख वर्ष का समय और दिया जा सकता है, पर यह काल-गणना कुछ कम सही और अनिश्चित-सी है। हिमयुग-पूर्व की घटनाओं में आस्ट्रेलो-पिथेसीन वनमानुषों और भद्दे पत्थरों और हड्डियों से बने उन औजारों के धुँधले चिह्न शामिल हैं जिन्हें सम्भवतः इन दक्षिण-अफ्रीकी वनमानुषों में से कुछ ने बनाया होगा।

जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, अब तक जितने भी मानव के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें से अधिकतर हिमयुग के उत्तरार्ध में पाये गये हैं, पुरानी काल-गणना के अनुसार भी यही बात लागू होती है। अब नई काल-गणना के अनुसार,

प्राप्त अवशेषों में से ज्यादातर वस्तुएँ दो लाख वर्ष से भी कम पुरानी हुई। स्वयं डाक्टर एमिलिआनी के शब्दों में, "मनुष्य में तेजी से विकसित होने की सामर्थ्य" विद्यमान थी। यह कथन भी वास्तविकता को कम करके बताना है। नये समय-क्रम से इस बात का संकेत मिलता है कि मनुष्य का विकास उससे भी कहीं अधिक शानदार और विस्फोटक तीव्रता से हुआ होगा जैसा कि मैंने पहले बताया है।

दुर्भाग्यवश अभी इस कहानी की पूरी रूपरेखा तैयार नहीं की जा सकती। हमें अब तक जो फॉसिल प्राप्त हुए हैं वे दूर-दूर बिखरे हुए और बहुत कम हैं। यदि फ्रांस के हिमयुगीन अन्तःशीतकालीन अवधि की फोन्टेशेवेद (Fontechevade) खोपड़ी को हमारे जैसे मनुष्य की खोपड़ी माना जाय, जैसा कि इस खोपड़ी के मस्तिष्क-कोटर से लगता है, तो हम, मानव जाति के अस्तित्व को शायद ७० हजार वर्ष पूर्व की तारीख दे सकते हैं। लेकिन उस काल में क्षेत्रीय दृष्टि से मनुष्य जाति कहाँ-कहाँ तक फैली थी, यह अज्ञात ही रहेगा। यदि इंग्लैंड में प्राप्त समस्यामूलक स्वान्सकाम्ब (Swanscombe) खोपड़ी भी समग्र रूप से पर हमारी ही प्रजाति की साबित हो जाय तो शायद आधुनिक मनुष्य का अस्तित्व आज से एक लाख बीस हजार वर्ष पूर्व रहा होगा। स्वान्सकाम्ब-खोपड़ी का चेहरा नदारद है लेकिन उसके मस्तिष्क-कोष की क्षमता आधुनिक मानव की-सी है।

यदि, अन्त में यह भी साबित हो जाय कि उस काल के मनुष्य का चेहरा आधुनिक मानव की तुलना में बहुत-कुछ भारी और बड़ा था तो भी, एमिलिआनी की नई काल-गणनाविधि को देखते हुए उस काल में आधुनिक मस्तिष्क के इतने पहले बन जाने से इस बात का संकेत मिलता है कि हिमयुग के प्रारम्भ-काल से पहले जिस मानव-मस्तिष्क के स्तर का प्रतिनिधित्व दक्षिण अफ्रीकी वनमानुष करते थे, उससे मनुष्य का विकास बहुत ही तेजी से हुआ होगा। या तो घटनाक्रम इसी ढंग से घटित हुआ होगा, अन्यथा दूसरे फॉसिल-प्राणी मानव-विकास की शृङ्खला के ही नहीं हैं। यदि हम अब भी इस विचारधारा से चिपके रहे कि मानव-विकास मन्द गति से हुआ है तो इसका अर्थ होगा कि हमारी जाति का वास्तविक उद्गम हिमयुग से पूर्व के किसी अज्ञात काल में लुप्त हो गया है, और दूसरे सभी मानव-फॉसिल विकास की दूसरी शाखाओं और अवरुद्ध प्रशाखाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, या उन जीवित फॉसिलों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि पहले ही प्लीस्टोसीन युग में पुराने पड़ गये हैं।

इस विचार के कुछ पृष्ठपोषक इस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं कि अमरीका में हाल में कार्बन-१४ विधि के अनुसार, यह काल-गणना ४० हजार

वर्ष के आस-पास दर्ज की गई है। यह युक्ति दी जाती है कि इससे मनुष्य के आश्चर्यजनक रूप से बहुत पहले और व्यापक रूप से फैल जाने का आभास मिलता है, यदि जैसा कि अब बताया जाता है, वह वस्तुतः हो इतनी कम आयु का है। लेकिन हाल में दक्षिण-पश्चिम में प्राप्त कुछ फॉसिलों की कार्बन-१४ विधि से निर्धारित काल-गणना को चुनौती दी गई। लन्दन-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रेडरिक ज्यूनेर (Zeuner) ने अभी हाल में (१९५७ में) यह सूचित किया कि कार्बन वाले जिन नमूनों को पहले क्षार (Alkali) में धो दिया गया तो कार्बन-१४ विधि से उनका समय निर्धारित करने पर जो परिणाम निकला, वह उनके वास्तविक काल से बहुत पहले का था। ऐसा लगता है कि किसी नमूने को क्षार से धोने पर उसमें मौजूद कार्बन-१४ का कुछ अंश अलग हो जाता है और इस तरह गणना गलत होकर उस वस्तु की आयु बढ़ जाती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि दक्षिण-पश्चिम में प्राप्त कुछ फॉसिलों के बारे में जो प्राचीनतम अमरीकी तिथियाँ निश्चित की गयी उनमें इस प्रकार परिवर्तन किया जाना चाहिए जिससे उनकी तिथि और आगे बढ़ाई जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य अमरीका में हिमयुग की समाप्ति के आसपास पहुँचा लेकिन इन पहले की तिथियों की गम्भीरता से पड़ताल की जाती है।

यह भी एक रोचक बात है कि आस्ट्रेलिया में जो केइलर (Keilor) खोपड़ी पाई गई थी, उसके बारे में किसी समय यह समझा जाता था कि वह हमारी जाति का मानव था और हिमयुग की तीसरी अन्तःशीतकालीन अवधि में जीवित पाया जाता था। लेकिन अब, कार्बन-१४ विधि के आधार पर इस खोपड़ी को निश्चित रूप से हिमयुग के बाद का मान लिया गया है। इस प्रकार आस्ट्रेलिया-जैसे दूरवर्ती महाद्वीप में, मानव द्वारा, अत्यन्त प्राचीन काल में प्रवेश करने के बारे में कोई विश्वास-योग्य प्रमाण शेष नहीं रह गया है। इसके अलावा यदि हम पुरानी दुनिया में, अपने ही जैसे मनुष्य को बहुत पुराने जमाने में हिमयुग के पहले शीतकाल के शुरू में खोजने की कोशिश करेंगे तो हमें अपने-आप से यह पूछना पड़ेगा कि हम इस पुरातन काल में इतनी शीघ्रता से स्पष्ट रूप में संस्कृतिहीन या लगभग संस्कृतिहीन स्तर पर कैसे जा गिरते हैं। यदि हमसे मिलता-जुलता मनुष्य सचमुच ही उससे कहीं अधिक पुराना है, जितना कि हम सोचते हैं, तो फिर यह भी सोचा जा सकता है कि उसके भौतिक अवशेष हमें लम्बे अर्से तक नहीं मिल पायें। फिर भी यह बात कुछ युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती कि बड़े मस्तिष्क वाला एक जीव यदि काफी दूर-दूर तक फैला हुआ था तो उसकी गतिविधियों के इतने कम प्रमाण क्यों पाये जाते हैं? इन सब बातों से ऐसा जान पड़ता है कि करीब पाँच लाख से लेकर

एक लाख पचास हजार वर्ष के छोटे से अर्से में मनुष्य को आधुनिक मस्तिष्क के अनिवार्य चिह्न प्राप्त हुए। इस प्रसंग में यह स्वीकार करना होगा कि आधुनिक मस्तिष्क के विकसित होने की विधि बड़ी अस्पष्ट है, तो भी इस सम्बन्ध में जो भी प्रमाण हमारे पास है, वे सभी इस बात का संकेत करते हैं कि इस प्रकार का विकास विस्मयजनक शीघ्रता से हुआ होगा।

इस प्रकार के शीघ्र विकास से, प्राकृतिक चुनाव तथा विकास के कुछ ऐसे तरीकों का आभास मिलता है जो उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिक लेखों की विचारधारा के आधार पर नहीं सोचे जा सकते। उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिक विचारों में मनुष्य के अलग-अलग दलों के बीच संघर्ष पर जोर दिया गया है और इस प्रकार के संघर्ष के लिए मनुष्य की बड़ी आबादी का होना जरूरी रहा होगा। हमें यहाँ पर, यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि डार्विन के पुराने तर्कों को न मानने का अभिप्राय यह नहीं है कि प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त को अस्वीकार किया जा रहा है। हम केवल ऐसी परिस्थिति का सामना कर रहे होंगे जिसमें डार्विन और वालेस दोनों, अपने-अपने तरीकों से यह समझने में असफल हो गये थे कि मनुष्य को बनाने में प्राकृतिक चुनाव की कौन-सी शक्तियाँ कार्य कर रही थीं। विक्टोरियन-काल के अधिकतर प्राणि-वैज्ञानिक जीव-जगत् में अस्तित्व के लिए होने वाले संघर्ष के अधिक दृश्य पहलू पर बहुत ज्यादा ध्यान देते थे। वे अपने चारों ओर, उद्योगवाद के क्रूर विस्तार में इसी संघर्ष को देखते थे, उनमें प्रकृति को पूर्णरूपेण—'रक्तरंजित नख-दन्त' के रूप में देखने की प्रवृत्ति थी।

उस काल के मानव-विज्ञान-विशारदों ने अभी तक आदिवासी समाजों की सावधानी से जाँच-पड़ताल नहीं की थी, उन्हें अभी भी यह सीखने की जरूरत थी कि अलग-अलग संस्कृतियों के लोगों की आधारभूत मानसिक क्षमताएँ यूरोपीयों-जैसी ही हैं। उस काल में आदिवासियों को अक्सर मानसिक रूप से निम्न श्रेणी का माना जाता था, यह समझा जाता था कि वे लोग ऐसे जीवित फॉसिल हैं जो अपने अस्तित्व की अन्तिम सीमा पर पहुँच चुके हैं और श्वेत जातियों के साथ संघर्ष में पिटते चले जा रहे हैं। लेकिन, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, वालेस इस प्रकार के पूर्वाग्रह से दूर थे और उन्होंने स्वयं आर्थिक कठिनाइयों का सामना करके, अपने समय के बड़े प्राणि-वैज्ञानिकों में, लगभग अकेले ही मनुष्य के विकास की दूसरी कुञ्जी खोजने की कोशिश की थी।

अपने विचारों के कारण वे बहुत-कुछ रहस्यवाद की दिशा में मुड़ गये, इतना होने पर भी उन्होंने कुछ ऐसे तथ्य खोज निकाले हैं जो काफी सही हैं। यह बात भलीभाँति समझी जा सकती है कि उन्होंने बहुत पहले ऐसे समय में

लिखा था जबकि वे सहज प्राकृतिक व्याख्याएँ उपलब्ध नहीं थीं जो आज आसानी से प्रस्तुत की जा सकती हैं। यह एक प्रभावित करने वाली बात है कि आज मनुष्य के जिन लक्षणों को हम 'परिवर्तित' शिशु के चिह्न या लक्षण कहते हैं, उन्हें यानी, मनुष्य का बाल-रहित शरीर, असहाय बचपन, और उसका आश्चर्यजनक रूप से विकसित मस्तिष्क—वालेस ने भलीभाँति देख लिया था और इन सब के बारे में वालेस ने ठीक ही समझा था कि ये लक्षण किसी-न-किसी रूप में मनुष्य के निरालेपन से सम्बन्धित हैं। उन्होंने अपने अध्ययन से जो परिणाम निकाला था और जो आज एक सामान्य बात समझी जाती है कि आदिवासियों की भाषायी सामर्थ्य किसी भी तरह से 'उच्च' जातियों की तुलना में कम नहीं है, उनके अपने समय में एक साहसपूर्ण स्थापना थी, क्योंकि यह उस समय के प्रचलित विश्वासों, वैज्ञानिकों के विश्वासों के, भी विपरीत थी।

हालाँकि अभी भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें हम नहीं समझ पाते, फिर भी यह सम्भव है कि मनुष्य का मानवीकरण करने वाली प्राकृतिक चुनाव की शक्तियाँ मुख्यतया, स्वयं उसके अपने सामाजिक, सांस्कृतिक जगत् में निहित थीं। दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य अपनी पुरानी दुनिया की सीमाएँ लाँघ कर इस नये अदृश्य वातावरण में पहुँचा तब इस वातावरण में जीवित रहने के लिए उतना ही जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ रहा था जितना कि उस पहली मछली को करना पड़ा था जो अपने डैनों से चल, डगमगाती हुई जल से बाहर सूखी धरती पर आई थी। मैंने कहा है कि यह नई दुनिया 'अदृश्य' थी। ऐसा कहना चाहिए इसलिए मैंने कहा है। यह नई दुनिया, मनुष्य के इर्द-गिर्द की चीज़ों में उतनी नहीं थी जितनी कि उसके अपने मस्तिष्क में, अपने आस-पास की दुनिया को देखने के उसके अपने दृष्टिकोण में और उस सामाजिक वातावरण में थी जिसे उसने अपने छोटे-छोटे मानव-दलों में बनाना शुरू किया था।

वह कुछ ऐसी वस्तु बन कर उभर रहा था जैसी कि पृथ्वी में पहले कभी नहीं देखी गई थी यानी एक स्वप्न-जगत् का प्राणी—एक ऐसा प्राणी जो पूर्णतया नहीं, तो कम-से-कम आंशिक रूप से एक स्वरचित रहस्यमय ब्रह्माण्ड में निवास करता था और इस रहस्यमय ब्रह्मांड के सम्बन्ध में केवल उसके अपने-जैसे मस्तिष्क वाले प्राणी ही जानते थे। प्रतीकों के माध्यम से उनमें आपसी आदान-प्रदान आरम्भ हो गया था। मनुष्य, जन्तुओं के शाश्वत 'वर्त्तमान' से निकल कर भूत और भविष्य का ज्ञाता हो गया। अद्भुत आकृतियों से भरे इस जगत् के सत्ताधिकारी वे अनदेखे देवता, उसके स्वप्नों में विचरने लगे।

यह कहा जा सकता है कि प्रकृति, मस्तिष्क की इन शक्तियों के माध्यम

से, अपने भूतकाल के गहन अन्धकार में प्रवेश करके उसका आभास प्राप्त करने लगी थी—भले ही यह मस्तिष्क जल और वायु के सीधे सरल ढंग के अनुसंधान में नितान्त मूढ़ग्राही रहा हो। इस अजीब, स्वप्नदर्शी और सतर्क मस्तिष्क के रूप में प्रकृति ने स्वयं अपनी सीमाओं को लाँघना शुरू कर दिया था। यह एक विचित्र अनेक सिरों वाला ब्रह्मांड था जो पदार्थहीन-सा अदृश्य रूप से गतिमान था, लेकिन इसके विचार कभी-कभी रात में जलती आग के चारों ओर बैठे अहेरियों की आँखों में दहकते थे, या फिर गुफाओं की दीवारों पर बनी तस्वीरों में मुखर होते या पौराणिक कथाओं और रीति-रिवाजों में अभिव्यक्त होते। शाश्वत 'वर्तमान' के जिस स्वर्ग से जन्तु-जगत् युगों से परिचित था, अन्ततः वह नष्ट हो ही गया। मानव-मस्तिष्क के माध्यम से, समय और अन्धकार, भलाई और बुराई ने प्रवेश किया और इस संसार पर आधिपत्य जमा लिया।

विक्टोरिया-काल के प्राणि-वैज्ञानिकों ने "जन्तुओं द्वारा अस्तित्व के लिए संघर्ष" पर इतना अधिक ध्यान दिया कि मानव-समाज और मस्तिष्क के विकास की दशा में जिस प्रकार के सामाजिक चुनाव का असर होता है, उसे वे कुछ हद तक ठीक-ठीक नहीं समझ सके। वे यह समझने में असमर्थ रहे कि मस्तिष्क की वृद्धि एक ऐसे अनवरत संघर्ष का परिणाम होगी जो प्रकृति में कुल्हाड़े या भाले से नहीं, बल्कि मानव-मस्तिष्क के पीछे सदा प्रच्छन्न फहराते अन्धकार-जगत् में लड़ा जाता है। यह प्रतीकात्मक संचार के लिए होने वाला संघर्ष था, क्योंकि इस नये सामाजिक जगत् में संचार का मतलब ही जीवन था सहज प्रकृति की दुनिया उजड़ रही थी। इस संघर्ष से उभर कर निकलने वाला प्राणी तब तक सम्पूर्ण और वास्तविक मनुष्य नहीं बना जब तक कि उसकी शैशवावस्था में उसके प्रतीक्षा-रत मस्तिष्क के सहज ग्राही पदार्थ में उस वर्ग के स्वप्न नहीं रोपे गए जो स्वयं एक सामाजिक नक्षत्र-मंडल है और जिसके बीच उसका अपना परिक्रमा-पथ निश्चित कर दिया गया है।

यह मस्तिष्क पहले-पहल कैसे बना? और कितनी तेजी से उसका विकास हुआ? चट्टानों के बीच टटोलने या टूटी-फूटी खोपड़ियों के अध्ययन से वैज्ञानिकों को कोई विशेष उत्तर नहीं मिलता। प्राइमेट जीव-वर्ग के बहुत जीवित सदस्य मौजूद हैं—इसी वर्ग में मनुष्य भी शामिल है। इस वर्ग के अन्य जीवित सदस्य दलों में रहते हैं लेकिन उनमें मनुष्य बनने के कोई चिह्न नजर नहीं आते। उनके मस्तिष्क और मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ पारिवारिक समानता पाई जाती है, पर वे मानव-मस्तिष्क नहीं होते। उन मस्तिष्कों में बड़ी चालाकी भरे और जंगली विचार भरे हैं जो हमें उस अकेले द्वार की याद दिलाते हैं जो एक बार, केवल एक बार, हमारे लिए बहुत समय पहले उस वक्त खुलना शुरू

हुआ था जब हमारी पृथ्वी सुदूर भूतकाल में अन्तरिक्ष-मार्गों से होकर कुछ आड़ी और सूर्य-प्रकाशित कक्षा में घूम रही थी।

जब कोई इस कहानी की जटिलता को समझने का प्रयत्न करता है तो उसे इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि मनुष्य इस ग्रह पर अकेला है। बल्कि वह इस बात पर हक्का-बक्का रह जाता है और हीनता-सी अनुभव करता है कि मनुष्य-जैसा प्राणी विकसित हो ही गया। क्योंकि इसके लिए चार बातें होनी आवश्यक थीं, और यदि ये चारों बातें एक साथ न हुई होती या एक-दूसरे के करीब-करीब न हुई होतीं तो मनुष्य की हड्डियाँ व्यर्थ ही कहीं दबी पड़ी होतीं और प्राचीन बलुई-चट्टानों के बीच बिसरा दी जातीं :

१. उसका मस्तिष्क लगभग तिगुना बड़ा होना था।
२. और मस्तिष्क की यह वृद्धि गर्भ में नहीं, बल्कि जन्मोपरान्त अत्यन्त शीघ्रता से होनी थी।
३. उसकी शैशवावस्था अधिक लम्बी होनी थी, ताकि उसके अधिकांश सहज-प्रवृत्तियों से हीन मस्तिष्क को दूसरों से प्राप्त ज्ञान को ग्रहण करने, जमा रखने, सीखने और उसे काम में लाने का एक पूरा-पूरा अवसर मिल सके।
४. यदि इस नये विचित्र जीव को अधिक परिष्कृत कार्य-कलापों के लिए तैयार करना था तो केवल ऋतु के दिनों सम्भोग के स्थान पर उसे पारिवारिक बन्धनों में बाँध कर उन्हें स्थायी बनाना जरूरी था।

इन चार मुख्य बातों को पूरा करने के लिए, प्राणि-विकास सम्बन्धी सैकड़ों छोटे-छोटे परिवर्तनों की जरूरत थी, इतना होने पर भी ये सब बातें—यानी वृद्धि की गति में परिवर्तन, लम्बी आयु, सिर के अन्दर अधिक रक्त-संचार आदि बहुत शीघ्रता से पूरी हो गई लगती हैं। यह एक ऐसी चकरा देने वाली घटना है जिसकी तुलना अन्य किसी चीज से नहीं की जा सकती। यह घटना बहुत ही जटिल है, इसके कई पहलू हैं और किस के स्पर्श से यह सम्पन्न हुई, यह सब भूली-बिसरी सदियों के गर्भ में छिपा पड़ा है।

हिमयुगीन धुन्ध के अवगुण्ठन में छिपे भूतकाल के किसी स्थल पर प्रकृति ने मस्तिष्क के कोशों के तेजी से संवर्धन और प्रगुणन का उपाय खोज निकाला और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनावश्यक सभी चीजों को क्रूरता से नष्ट करके यह कार्य सम्पन्न कर दिया। हमारे शरीर में बाल नहीं रहे, हमारे जबड़े और दाँत छोटे हो गये, हमारे यौन-जीवन की आरंभावस्था दूर चली गयी, हमारा बचपन किसी भी अन्य जानवर के मुकाबले अधिक असहाय हो गया, क्योंकि इनमें से हर चीज को उस तेजी से बढ़ने वाले कुकुरमुत्ते के

विकसित होने की प्रतीक्षा करनी थी जो हमारे सिरों के अन्दर पनप आया था।

संसार के सभी जीवों से श्रेष्ठ मनुष्य में उसका मस्तिष्क सचमुच ही एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। जैसा कि प्राकृतिक इतिहास के ब्रिटिश संग्रहालय के निदेशक गैविन डी बीयर (Gavin de Beer) ने कहा है कि "यदि शैशवावस्था लम्बी हो जाती है तो उसके अनुसार ही भ्रूणावस्था के तन्तु भी अधिक समय तक बने रहते हैं और इन तन्तुओं में आगे भी परिवर्तित होने की क्षमता रहती है।"[1] स्पष्ट ही यही बात मस्तिष्क-वृद्धि को आगे बढ़ाने का सम्भावित साधन है। कम जीवन-अवधि और धीमी मस्तिष्क-वृद्धि के कारण वनमानुष उन आद्य तंत्रिकाप्रसू (primitive neuroblasts)—जो भ्रूणावस्था में पाये जाते हैं और इधर-उधर जा सकते हैं—का उस मात्रा में उपयोग नहीं कर सकता है जितना कि मानव-शिशु के लम्बे और साथ ही परस्पर-विरोधी परन्तु तीव्रगामी विकास में सम्भव होता है। दूसरे शब्दों में, शरीर के अन्दर जो कालमन्त्र है, उसने वनमानुष के मस्तिष्क-वृद्धि की एक सीमा निश्चित कर दी है। जैसा कि हम पहले विचार कर चुके हैं, मनुष्य के पूर्वज किसी प्रकार इस सीमा से बाहर निकल आये। यह एक जटिल समस्या का सरलीकरण अवश्य है, फिर भी यह उस प्रश्न के उत्तर की ओर संकेत करता है जो वर्षों पहले वालेस ने पूछा था कि मनुष्य में, इतनी विचित्र और इतनी समृद्ध, मानसिक शक्ति क्यों पाई जाती है जबकि अपने अस्तित्व के लिए किये जाने वाले संघर्ष में आवश्यक गुणों के चुनाव की पुरानी उपयोगितावादी परिभाषा के अनुसार आँकने पर मनुष्य की समृद्ध मानसिक शक्तियों के अनेक कलात्मक पहलुओं का कुछ भी सीधा महत्त्व समझ में नहीं आता।

जब मस्तिष्क-वृद्धि की ये बन्धन-मुक्त क्षमताएँ गतिशील हुईं तो वे मनुष्य को एक ऐसे नए लोक में ले गयीं, जहाँ पुराने विधि-विधान बिल्कुल ही लागू नहीं होते थे। भाषा के क्षेत्र की हर प्रगति के साथ, प्रतीकात्मक विचारों के साथ, मस्तिष्क के मार्ग बढ़ते गये। इस सिलसिले में यह बात काफी महत्त्वपूर्ण है कि मस्तिष्क के वे भाग जो जीवन की प्रक्रिया में सबसे अधिक काम आते हैं और जो सबसे अधिक प्राचीन हैं, वे ही सबसे पहले परिपक्व होते हैं। जो भाग अभी हाल ही में प्राप्त किये गये हैं और जो मस्तिष्क के कम विशिष्टता-प्राप्त भाग हैं और जिन्हें मस्तिष्क के 'शान्त क्षेत्र' कहा जाता है, वे सबसे देर में परिपक्वता प्राप्त करते हैं। कुछ तन्त्रिका-वैज्ञानिकों (Neurologists) का विचार है कि

---

1. *Embryos and Ancestors* rev. ed. (New York. Oxford 1951), p. 93.

[illegible] कुछ ऐसे लक्षण भी सुप्तावस्था में विद्यमान हैं जो कि मानव जाति में भविष्य में प्रकट हो जाते हैं, और उनका ऐसा सोचना अकारण नहीं है।

मनुष्य का मस्तिष्क, आज के युग में भी अपनी कभी न त्यागी जाने वाली व्यक्तिगत समृद्धि के साथ एक विशाल सामाजिक मस्तिष्क की इकाई-भर बनता जा रहा है। इस सामाजिक मस्तिष्क में अमरता की क्षमता है और उसकी स्मृति-शक्ति, संसार के महान् विचारकों की एकत्रित मनीषा का भंडार है। भविष्य के बारे में चिन्तन करते हुए, वैज्ञानिक हाल्डेन ने संभावना प्रकट की है कि यदि मस्तिष्क की प्रगति जारी रही तो हमारी शैशवावस्था और अधिक लम्बी हो जायेगी तथा परिपक्वता और कम हो जायेगी।

फिर भी यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि हमारे वर्तमान सुविधासम्पन्न वातावरण में, मनुष्य में होने वाले परिवर्तनों की गति फिर कभी उतनी ही तेज हो जायेगी जितनी कि उस समय थी जबकि मानव अपने विनाश के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था। आदम के बगीचे की (ईडेन की) कहानी उससे कहीं बहुत बड़ा रूपक है जितना कि हम सोचते हैं। क्योंकि वह वस्तुतः मनुष्य ही था जो कि वहाँ विश्व की प्रातःवेला में सूर्य की किरणों और छायाओं के बीच स्मृति-हीन चलता हुआ एक स्थान पर आकर बैठ गया और जिसने व्यग्र हाथ अपने भारी माथे पर रख लिये। तब से अब तक, काश और अन्धकार, भलाई और बुराई का ज्ञान उसके साथ-साथ चल रहे हैं। यह प्रारम्भ है जिसका संयोग हिमयुग की पहली और दूसरी शीतकालीन अवधि के बीच, शरीर में निहित कालयन्त्र से हुआ था। प्रतीत होता है उसी छोटे-से मनुष्य की अन्तरात्मा में भय, आतंक और एकाकीपन की एक नई दुनिया पैदा हो गई।

चार अरब वर्ष में पहली बार किसी जीवित प्राणी ने स्वयं अपने बारे में चिन्तन किया था और एक आकस्मिक अनजाने अकेलेपन के साथ, बाँसों के वन से गुजरती रात्रिकालीन पवन की फुसफुसाहट को सुना था। शायद वह यह जानता था कि शीतल जल-प्रवाह के किनारे-किनारे उसी उसी धारा में से उसे एक विराट्-यात्रा पर जाना है। संभवतः इसी तरह का पूर्वज्ञान अब उन लोगों के मन में बेचैनी भर देता है जो एक भरे-पूरे कमरे से बाहर निकल, राहत के साथ अन्तरिक्ष की अगाध दूरी की ओर तब तक घूरते रहते हैं जब तक कि उन अनन्त मीलों की अपार शून्यता में एक भी तारा टिमटिमाता रहता है।